हरिचरणदास कृत

मोहन लीला

लेखक—सम्पादक
प० कृपाशंकर तिवारी
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

सहायक—सम्पादक
डॉ० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
प० चैनसुखदास मार्ग, जयपुर—३

मूल्य दस रुपये

प्रकाशक रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
पं० चनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रथम संस्करण अक्टूबर १९७३

मुद्रक स्वदेश प्रिन्टर्स,
तेलीपाड़ा जयपुर-३

विषय-सूची

हरिचरणदास कृत मोहन लीला की भूमिका

हरिचरणदास रीतिकाल मे एक प्रमुख कवि और आचाय हैं। इनका जन्म स० १७६५ म हुआ तथा मृत्यु स० १८४४ के उपरात।

य एक प्रकार से हिन्दी साहित्य के लिए एक नवीन उपलब्धि हैं क्योकि इनके ग्रन्थो पर कुछ चर्चा हाल ही मे हुई है। यों इनका उल्लेख मिश्रबन्धुओ ने भी किया है। किन्तु इनकी एक कृति कर्णाभरण कोष का कुछ विस्तार पूवक वणन और अध्ययन सबसे पहले डा० सत्यवती महेन्द्र ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी नाम माला साहित्य' मे सन् १९६० म किया था। और अब सन् १९७१ मे डा० कुसुम बराठी ने इनके प्राप्त सभी ग्रन्थो का विस्तृत अध्ययन करके एक शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय की पी—एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया और इस पर इन्हे यह उपाधि उपलब्ध हो गयी है। इस प्रकार अब हरिचरणदास ने हिन्दी विद्वानो का समुचित ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इनके रचे १२ ग्रन्थो मे से 'मोहन लीला' एक ऐसा ग्रन्थ था जिसकी प्रतियाँ ऐसा अनुमान था कि नही मिल रही हैं किन्तु काफी शोध के उपरात डा० कुसुम बराठी को इसकी एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर म होने की सूचना मिली। प्रो० कृपाशकर तिवारी जी न इस 'मोहन लीला' की एक प्रति बहुत पहले ही प्राप्त करली थी। इस प्रकार अभी तक जहाँ तक हम पता है इसकी दो प्रतियाँ ही मिलती हैं। इसलिए प० कृपाशकर तिवारी जी ने इस मोहन लीला' को प्रकाशित करने का सकल्प किया। प० कृपाशकर तिवारी जी राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं, और राजस्थान विश्वविद्यालय के विज्ञान सकाय मे हिन्दी विभाग के स्थानीय अध्यक्ष भी हैं। वे जहाँ साहित्य शास्त्र म रुचि रखते हैं वहाँ उनकी आतरिक वृत्ति भक्तिमय भी है। यही कारण है कि इन्होंने अपन इतन महत्वपूण हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह म से इसे प्रकाशनाथ चुना। मोहन लीला मे भक्ति के साथ काव्य शास्त्रीय प्रतिभा का अद्भुत मिश्रण प्रस्तुत हुआ है। हम प० कृपाशकर तिवारी के सकल्प का अभिनन्दन करते हैं।

मोहन लीला को देखकर डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी के इस अभिमत की ओर ध्यान जाता है कि हिन्दी म रीतिकाल को भक्तिकाल से **पृथक** नहीं

किया जा सकता। जिसका अर्थ है कि रीतिकाल के सभी कवि भक्त थे। हरिचरणदास ने रामायण सार और भागवत प्रकाश ये दो ग्रन्थ और इस प्रकार के लिखे है जिन्हें हम भक्ति भावना से प्रेरित मान सकते हैं। शेष ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थ तो काव्यशास्त्र विषयक हिन्दी के प्रमुख ग्रन्थों की टीका से सम्बन्धित हैं—रसिक प्रिया की टीका, कवि प्रिया की टीका, भाषाभूषण की टीका। बिहारी सतसई की एक प्रसिद्ध टीका भी इन्होंने लिखी है। भाषा दीपक, सभा प्रकास और कवि वल्लभ इनके अपनी ओर से निजी आचार्यत्व को स्थापित करने वाले रसिकप्रिया कवि प्रिया और भाषाभूषण की कोटि के ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त और दो नाममालायें—श्रुति भूषण और कर्णाभरण प्रस्तुत की।

इस प्रकार भक्ति काव्य विवेचन और रीति स्थापन की त्रिवेणी हरिचरणदास के कृतित्व में प्रवाहित दिखायी पड़ती है। इस त्रिवेणी में भक्ति और कवि की धूप छाँह में प्रताप विरुदावली जैसा एक व्यक्तिगत कृतज्ञता का फूल भी तरता हुआ दिखाई पड़ता है।

वैसे यह प्रश्न नहीं उठना चाहिये कि ये भक्त पहले हैं या कवि पहले हैं क्योंकि कवित्व के तान में भक्ति का बाना इस कवि के कृतित्व में पिरोया हुआ है, किन्तु हम जब भक्ति और कवित्व के इस धूप-छाहीं मिश्रण की बात करते हैं तो हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन इतिहास के विवेचक आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[1] का यह कथन हमारा ध्यान आकर्षित करता है। इस सम्बन्ध में यह कह देना आवश्यक है कि भक्ति और शृंगार की रचनाओं के क्षेत्र भिन्न भिन्न थे। शृंगारी कवि अधिकतर दरबारी थे। भक्त कवियों का सम्बन्ध दरबारों से बिल्कुल नहीं था। उनकी रचना वस्तुतः जनता हृत्तन्त्री की प्रतिध्वनि थी। पूर्वोक्त तथा अन्य बहुत से कवि दरबारों में भी अपनी कविताई' का चमत्कार दिखा रहे थे।'

आचार्य मिश्र के इस सिद्धान्त से भक्ति का क्षेत्र दरबारी क्षेत्र से बिल्कुल दूर हो जाता है। किन्तु जब हम यह देखते हैं कि दरबारी कवि तो क्या स्वयं कितने ही दरबार भी बड़े भक्त हुए हैं तो इस सिद्धान्त के पुनर्वीक्षण की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। आचार्य जी ने यह कथन बिहारी की भूमिका के प्रथम संस्करण में सं० २००७ में लिखा होगा अर्थात् आज से २२ वर्ष पूर्व। इसे मैं समझता हूँ कि इससे भी पूर्व से सिद्धान्त रूप से माना जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भी ऐसे प्रमाण उपस्थित थे जो इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक प्रश्न चिह्न खड़ा कर देते थे। उदाहरणार्थ—यह इतिहास के माध्यम से सभी जानते रहे हैं कि जोधपुर का घराना नाथ

[1] मिश्र विश्वनाथ प्रसाद—बिहारी पृ० १६

सम्प्रदाय का भक्त रहा है। महाराजा जसवन्तसिंह भी भक्त थे और उनकी एक रचना 'भाषा भूषण' को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ अन्य विषयों से सम्बन्धित है। सभी जानते है कि किशनगढ नरेश और उनकी रानियाँ वल्लभ सम्प्रदाय या निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्त रही हैं। नागरीदास जी तो राजपाट छोड़कर वृन्दावन में जा बस थे। जयपुर के नरेश भी किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हैं और महाराजा प्रताप सिंह तो 'ब्रजनिधि' के रूप मे प्रसिद्ध हुए। सवाई जयसिंह ने तो स० १७८० के लगभग एक वृहद धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था। जिसमे वृन्दावन के सभी ब्रज सम्प्रदायो को आदेश दिया गया था कि वे सम्प्रदाय की प्रामाणिकता सिद्ध करें।

> वृन्दावन के भक्ति-सम्प्रदायो को अपनी मान्यताओ की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए विवश किया था। उसके लिए स० १७८० के लगभग आमेर मे एक वृहत् धर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया। राजा का आदेश था कि वृन्दावन के सभी भक्ति सम्प्रदाय अपने प्रतिनिधि भेजकर वहा अपने सम्प्रदायो की प्रामाणिकता सिद्ध करें। भक्ति सम्प्रदायी महानुभाव प्रेमाभक्ति के एकान्त उपासक थे। वे धार्मिक विवाद और शास्त्रार्थ के झंझट मे नहीं पड़ना चाहते थे किन्तु राजा के आदेश की अवहेलना करना भी सम्भव नहीं था। उस काल में जिन भक्त सम्प्रदायो ने उक्त सम्मेलन मे भाग लेकर अपने सिद्धान्तो की प्रामाणिकता सिद्ध की थी वे सवाई राजा द्वारा पुरस्कृत हुए थे। जो वहा नहीं जा सके, वे राजा के कोप से बचने के लिए वृन्दावन ही छोड़कर चले गये थे। इस प्रकार निष्क्रमण करने वालों मे उस काल के राधावल्लभीय धर्माचार्य गण प्रमुख थे। उन्हें कई वर्ष तक वृन्दावन से बाहर रहना पड़ा था और राजा के देहावसान होने के बाद ही वे अपने घरों को वापिस लौट सके थे।[1]

मीतल जी का उक्त उद्धरण भी इस बात की ओर संकेत करता हैं कि धर्म के विषय में न तो राज्य ही उपेक्षावृत रहे थे और न जनता मे ही उसकी उपेक्षा थी। यह भी स्पष्ट है कि उस समय अधिकांश सम्प्रदाय भक्ति पर ही निर्भर करते थे। इस दृष्टि से यह आभास मिलता है कि रीतिकाल मे भक्ति का अभाव तो था ही नही, उसकी उपेक्षा भी नही थी। इस भक्ति के साथ साथ ही काव्य कला और रीतिपरक रचनाएँ साथ-साथ चल रही थी। इसी के साथ-साथ समस्त हिन्दी क्षेत्र मे एक पुनराहरण जैसा परिवेश उपस्थित हो रहा

---

१ मीतल, प्रभु दयाल—ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ० ५०२

था क्योकि इस काल म सस्कृत के वाङ मय से अनेका महत्त्वपूर्ण ग्रथो का अनुवाद भी हो रहा था। सस्कृत ग्रथो का आधार इस काल के समस्त साहित्य और वाङ मय के पृष्ठ पर दिखायी पडता है।

इसी सदभ मे हम यहा अपने ब्रज साहित्य क इतिहास से एक उद्धरण देना समीचीन समझते हैं— जिसे रीतिकाल कहा जाता रहा है और जिसके सम्बन्ध म यह भी माना जाता रहा है कि इस काल म शृ गार रस की ही प्रधानता रही और इस चर्चा का प्रभाव यह होता है कि यह विश्वास कर लिया जाता है कि बस इस काल मे शृ गार रस की ही नदी बहती थी और कवियो के आश्रयदाता घोर विलासी सामत थे उस रीतिकाल मे राजस्थान मे रचित ब्रजभाषा साहित्य पर एक दृष्टि डालने से कुछ और ही चित्र खडा होता है। यह चित्र इस फलक से स्पष्ट होता है–(नीचे जो फलक दिया जा रहा है, वह सशोधित फलक है।) ब्रज साहित्य के इतिहास के फलक को श्री केदार लाल मिश्र ने सशोधित किया है। श्री केदार लाल मिश्र हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय के शोध छात्र हैं। 'राजस्थान मे हिन्दी साहित्य शास्त्र' विषय पर ये अनुसधान कर रहे हैं। इस सूची म उन्होने अपने अध्ययन अनुसधान के आधार पर सामग्री दी है। कितना अन्तर है। हमारे मूल फलक म कुल ६८ कवि थे। इसमे १०९ हैं—४१ कवि अधिक? कवियो की कुल रचना सख्या मूल म ४६० थी इसम ८२६–३६६ अधिक। रीति ग्रथो का योग मूल म ६२ था, इसम १८६–१२४ अधिक। × × ×

	कवि	काल—सवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध मुक्त)
१	बिहारी	१६६०—१७२०	जयपुर	१	१
२	नरहरिदास	१६४८—१७३३	जोधपुर	२	—
३	जान	†१६७१—१७२१	फतहपुर (शेखावाटी)	७५	१४
४	महाराज जसवतसिंह	१६८३—१७३५	जोधपुर	९	१
५	चेहरी	१६८८—१७१०	बूदी	२	२
६	साईदास	१७०९	मेवाड	१	—
७	डूगरसी	१७१०	बूदी	१	—
८	सूरदत्त	१७१६	अमरसर (शेखावाटी)	१	१
९	मतिराम	१७१९—४७	बूदी	४	४(+२)
१०	कुलपति मिश्र	१७२०—६०	जयपुर	५२ (उपलब्ध १३)	२
११	वृन्द	१७१५—१७८०	जोधपुर (आगरा, किशनगढ)	६	२
१२	उदयचन्द	१७२६—६५	बीकानेर	३	१
१३	मानजी	१७३०—४०	मेवाड	२	१
१४	मुनि मान	१७३०—४६	बीकानेर	६	३
१५	रूपजी	१७३०	मेडता	३	३
१६	जनार्दन भट्ट	१७३०—१७५०	बीकानेर (जयपुर)	१०	२

	कवि	काल-संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
१७	गनीदास ख्यात	१७११(उप०)	बीकानेर	१	१
१८	महाराज अजीतसिंह	१७३५-१७८१	जोधपुर	२	१
१९	मीर मुन्शी माधोदास	१७४०	किशनगढ़	१	—
२०	मान्तु नाथ	१७४०-१७८१	कोटा	३	—
२१	हरिनाम	१७४०	खंडेला (जयपुर)	१	—
२२	देवीदास	१७४२ (उप०)	करौली	२	१
२३	माहराम	१७५० (लगभग)	बीकानेर	१	१
२४	द्वारिकानाथ भट्ट	१७५०	जयपुर	७	२
२५	बुधसिंह	१७५२-१७८६	बूंदी	१	१
२६	सोमनाथ चौबे	१७५२-१७८०	बूंदी	२	१
२७	अभयराम सनाढ्य	१७५४ (र० का०)	बीकानेर	१	१
२८	सूरति मिश्र	१७५५-१८००	(आगरा) जयपुर जोधपुर मेड़ता बीकानेर	२३	८
२९	नागरीदास	ज० १७५६ मृ० १८२१	किशनगढ़	७७	२
३०	जय गोविन्द वाजपेयी	१७६० (उप०)	जयपुर	१	१
३१	नाजिर आनन्द राम	१७६१		१	—
३२	मुरली	१७६३-१७७५	मेवाड़	२	—

	कवि	काल–सवत	स्थान	कुल ग्रंथ	रीति ग्रंथ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
३३	महाराजा राजसिंह	१७६३–१८०५	किशनगढ	३	—
३४	हित वृन्दावन	१७६५	पुष्कर (किशनगढ)	४२	—
३५	देवर्षि कृष्ण भट्ट कलानिधि	१७६५–१८१५	बूंदी, जयपुर भरतपुर	१६	५
३६	हरिचरणदास	१७६६–१८३५	किशनगढ	१३	३
३७	प्रियादास	१७६९	जयपुर	१	—
३८	वल्लभ (वृन्द पुत्र)	१७७०	किशनगढ	२	१
३९	कृपा राम	१७७२	जयपुर	२	१
४०	दयाल	१७७५	मेवाड़	१	—
४१	जयकृष्ण	१७७६–१८२५	जोधपुर	३	—
४२	भोज मिश्र	१७७७	बूंदी	१	१
४३	रायशिवदास	१७८०–१८०९	जयपुर	६	४
४४	जोधराज	१७८५ (पूर्व)	नीमराणा	१	—
४५	सोमनाथ	१७८५–१८१३	भरतपुर	१५	२
४६	शिवराम	१७९०–१८००	भरतपुर	२	१
४७	नन्दराम	१७९०–१८०२	मेवाड़	२	—
४८	दलपति राय }	१७९०–१७९८	(महमदाबाद) उदयपुर	१	१
४९	वंशीधर }				

	कवि	काल-संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध मुक्त)
२०	महाराज गुमानसिंह	१७६०	भरतपुर	१	—
२१	सुन्दर कुँवरि	१७९१–१८५१	किशनगढ़	११	४
२२	बेनी प्रवीन	१७९५	उदयपुर	१	१
२३	कुंवर कुशल	१७९६ (लगभग)	जोधपुर (वन्ध)	१	—
२४	बारू कुशल				
२५	द्वारकानाथ भट्ट	१८०० (लगभग)	जयपुर	८	१
२६	उमेद राम	ज० १८०० मृ० १८७८	जयपुर धावर	१३	४
२७	कन्हैया लाल भट्ट	१८०० (लगभग)	जयपुर	३	२
२८	सूदन	१८०२–१८१० (र० का०)	भरतपुर	१	—
२९	देवकरी	१८०३	मेवाड़	१	—
३०	उदयनाथ कवीन्द्र	१८०४	बूंदी	२	१
३१	गवरी बाई	१८१५	डूंगरपुर	१	—
३२	गोपानाथ	१८१८–१८३०	(आगरा) भरतपुर जयपुर	१६	७
३३	महा० प्रतापसिंह ब्रजनिधि	१८२१–१८६०	जयपुर	२३	३
३४	शोभा नाथ सोम	१८२५	जयपुर भरतपुर	३१	१

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
६५	रामनारायण रसरासि	१८२७	जयपुर	१२	३
६६	बाँकीदास	१८२८–१८९०	जोधपुर	२७	२
६७	नगजी	—	सीकर	१	१
६८	जगदीश' भट्ट (जगन्नाथ)	१८२९–१८९५	जयपुर	१७	४
६९	रसपुंजदास	१८३०	—	४	३
७०	जनराज वैश्य	१८३३	जयपुर	३	१
७१	गणपति भारती	१८ ५ (लगभग)	जयपुर	१२	६
७२	उजियारे कवि	१८३७ (लगभग)	जयपुर भरतपुर	२	
७३	देवेश्वर माथुर	१८३९	भरतपुर	१	१
७४	महाराज मानसिंह	१८३९–१९००	जोधपुर	२४	—
७५	दौलत (वृन्द वंशज)	१८४६ (क० का०)	किशनगढ़	२	२
७६	चण्डीदास	१८४८–१८९२	बूंदी	५	—
७७	पद्माकर भट्ट	१८४९–१८९०	जयपुर, उदयपुर	११	३
७८	मुरलीधर भट्ट प्रेम	ज० १८२०–मृ० १८७२	जयपुर, अलवर	३	२
७९	रसिक गोविन्द	१८५२–१८९०	जयपुर (वृन्दावन)	१३	३

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रंथ	रीति ग्रंथ (शास्त्र बद्ध, मुक्त)
८०	भोगीलाल (देव बच्छ)	१८५६ (र० का०)	अलवर	२	२
८१	हरिनाथ	१८५३–१८८८	अलवर	२	१
८२	जसवंतसिंह ब्रजराज	१८५७–१८६५	मेवाड़	१	—
८३	श्री पतराम (घासीराम)	१८६०–१९००	भरतपुर	९	२
८४	उत्तम चन्द भण्डारी	ज० १८११ मृ० १८६४	जोधपुर	६	१
८५	दीनजी	१८६१–१८८८	मेवाड़ (एकलिंग)	१	—
८६	गो० कृष्णलाल	१८७२	बूंदी	३	२
८७	रामनायक	१७७२	कामवन (भरतपुर)	१	१
८८	मुगराम (वृंदबाज)	१८७४–१९२०	किशनगढ़	२०	३
८९	मदन भट्ट (कृष्ण भट्ट-राज)	१८७४–१८९०	जयपुर बूंदी	२२	४
९०	गणेश चतुर्वेदी	१८७५ (लगभग)	करौली	५	२
९१	किशनजी	?१८७६	मेवाड़	२	—
९२	चन्द्रशेखर वाजपेयी	१८७७–१९३२	जोधपुर, अलवर	६	२
९३	कालीराम	१८८३	जोधपुर	२	—
९४	नाहूराम				
९५	मोतीराम	१८८५	भरतपुर	२	१

	कवि	काल–संवत	स्थान	कुल ग्रन्थ	रीति ग्रन्थ (शास्त्र बद्ध मुक्त)
९६	चनराम	१८८५	जयपुर, शाहपुरा	६	१
९७	रसानन्द	१८८९	भरतपुर	१३	५
९८	कृष्ण कवि	१८९३	जयपुर	१	१
९९	कमलनयन रससिंधु	१८९६ (लगभग)	बूंदी (गोकुल)	१	१
१००	चतुर्भुज मिश्र	१८९९	भरतपुर	१	१
१०१	शिवराम	१८९९	जोधपुर	१	१
१०२	गो० जगदीशलाल	१९००–१९५०	बूंदी	१८	२
१०३	बिडदसिंह 'माधव'	१९१४	अलवर	२	२
१०४	कान्ह कवि (लघु कान्ह)	१९१६	अलवर	१	१
१०५	गुलाबसिंह गुलाब	१९२५–१९५८	अलवर, बूंदी	३४	१०
१०६	कविराव बख्तावर सिंह	१९३३	उदयपुर	१२	२
१०७	महाराजा जवानसिंह 'नगधर'	१९३६	किशनगढ़	२	१
१०८	जयलाल (वन्द वंशज)	१९४०	किशनगढ़	४	१
१०९	जगन्नाथ चौबे	१९५० (र० का०)	बूंदी	५	१
				८२६	१८९

इसमें हमें कुल कवि १०९ मिलते हैं जिन्होंने ८२६ के लगभग ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे। इन ८२६ ब्रजभाषा ग्रंथों में से केवल १८६ ऐसे ग्रंथ हैं जो रीतिकाव्य की समस्त प्रवृत्तियों के अनुसार लिखे गये। नये अनुसंधान से और भी कवियों तथा ग्रंथों का पता चल सकता है, और यह भी मान लेना चाहिये कि ऊपर का फलक प्रस्तुत करने में और कुछ कवि अथवा ग्रंथ छूट गये हैं। फिर भी जो रूप यहां प्रकट होता है, उसमें पारस्परिक अनुपात में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं मिल सकता। जो स्थिति राजस्थान की है वही सभी क्षेत्रों की मानी जा सकती है और उसमें साहित्य की प्रवृत्तियों की प्रकृति भी समान मानी जा सकती है।

इस तालिका से यह भी विदित होता है कि केवल रीति ग्रंथ मात्र लिखने वाले कवि २४ हैं। और एक भी रीति ग्रंथ न लिखकर मात्र अन्य विषयों पर लिखने वालों की संख्या २५ है। निष्कर्षतः केवल रीति ग्रंथ लेखक कुल लेखक संख्या के तीन प्रतिशत हैं और ऐसे लेखक भी जिन्होंने रीति ग्रंथ लिखे ही नहीं तीन प्रतिशत हैं। इससे यह बात भी प्रमाण्य हो जाती है कि इस युग में रीति ग्रंथ लेखन की ही प्रधानता थी।

'ब्रज साहित्य का इतिहास' के उद्धरण के पश्चात अब हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास के षष्ठ भाग में से एक अन्य रोचक उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

'असनी के ठाकुर कवि ने अपने आश्रयदाता काशी निवासी श्री देवकी नन्दन के नाम पर सतसयावर्णार्थ टीका में बिहारी का विस्तृत वृतांत लिखा है। उसका सारांश इस प्रकार है— बिहारी नामक एक कुलीन विप्र ब्रज में वास करता था। उसकी पत्नी कविता करने में प्रवीण थी। राजा जयसिंह से वृत्ति पाकर वह अपनी गृहस्थी चलाता था। एक बार जब जयपुर राजा के दरबार में वृत्ति लेने गया तो उसने राजा को नई ब्याह कर लाई हुई पत्नी के प्रेमपाश में फँसा पाया। राजा दरबार में नहीं आते थे। निराश होकर बिहारी को खाली हाथ लौटना पड़ा। बिहारी ने यह समाचार अपनी पत्नी को सुनाया। उसने तत्काल नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल वाला दोहा बनाकर बिहारी को दिया और फिर जयपुर वापस भेजा। दासी के द्वारा यह दोहा महाराज के पास भिजवाया गया। उसे पढ़कर राजा को प्रबोध हुआ और अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने अंजली भर मोहर बिहारी को प्रदान की। साथ ही यह भी कहा कि यदि तुम इसी प्रकार दोहे बनाकर लाते रहे तो तुम्हें प्रति दोहा एक मोहर मिलेगी। बिहारी ने अपनी पत्नी को यह समाचार

सुनाया। पत्नी ने १४०० दोहे बनाकर और १४०० मोहरें प्राप्त की। उन्हीं में से छाँटकर सात सौ की यह सतसई तैयार हुई। इस सतसई को लेकर पत्नि के कहने से बिहारी छत्रसाल महाराज के दरबार में पहुँचे। सतसई उन्हें दिखाई गई। महाराज ने उसे परख के लिए अपने गुरु श्री प्राणनाथ जी के पास भेज दिया। साधु प्राणनाथ ने शृंगार पूर्ण सतसई को घृणास्पद समझा और वापस कर दिया। बिहारी अपना सा मुँह लेकर चले आये। घर आकर जब पत्नी से सब वृत्तान्त कहा तो पत्नी ने तत्काल बिहारी को छत्रसाल के पास वापस जाने का परामर्श देते हुए कहा कि महाराज से निवेदन करना कि सतसई की परीक्षा के लिए इसे प्राणनाथ की धार्मिक पुस्तक के साथ पन्ना के युगल किशोर जी के मन्दिर में रख दिया जाय। जिस पुस्तक में श्री युगल किशोर जी के हस्ताक्षर हो जाय वही पुस्तक प्रामाणिक मानी जाय। ऐसा ही किया गया और हस्ताक्षर बिहारी सतसई पर हुए। इस समाचार को सुनते ही बिहारी बिना दक्षिणा लिए सीधे अपनी पत्नी के पास चले आये और पत्नी को सब समाचार बताया। उधर बिहारी को न पाकर राजा ने हाथी, घोड़े पालकी आभूषण आदि विपुल सम्पत्ति बिहारी के लिए भेजी। बिहारी की पत्नी ने सारी दक्षिणा वापस करके यह दोहा लिख भेजा।

तो अनेक औगुन भरी चाहै याहि बलाय।
जो पति सपति हू बिना जदुपति राखे जाय।

एक और दोहा प्राणनाथ जी के पत्र के उत्तर में लिखा —

दूरी भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तार न काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चग रग गोपाल।

इन दोहों को पढ़कर महाराज छत्रसाल और प्राणनाथ बहुत लज्जित हुए और बहुत सा द्रव्य आदि भेजा। बिहारी की पत्नी पतिव्रता थी अत उसने सतसई रचने का श्रेय स्वयं नहीं लिया वरन बिहारी के नाम से ही ग्रंथ को प्रसिद्ध किया।[1]

इन उद्धरणों से एक तो यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि रीतिग्रंथों से कम से कम ५–६ गुने अधिक ग्रंथ रीतिकाल में लिखे गये। दूसरे बिहारी सतसई जैसे ग्रंथों की प्रतिष्ठा धर्म ग्रंथ के रूप में मानने की प्रवृत्ति भी थी। बिहारी प्राणनाथ वाली घटना का उल्लेख और बिहारी सतसई पर युगल किशोर के हस्ताक्षर 'रामचरित मानस' पर शिव के हस्ताक्षरों वाली किंवन्ती की पुनरावृत्ति है। यह बात आवश्यक है कि वैष्णव ग्रंथ रामचरित मानस पर शिव के हस्ताक्षर हुए, और शृंगार के मात्र ग्रंथ बिहारी सतसई पर

१ हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग १२) पृ० ५१०

प्राणनाथ सत के ग्रथ की तुलना मे सतसई पर युगल किशोर के हस्ताक्षर हुए। इस सम्बन्ध मे यह हरिचरणदास का एक कथन भी महत्वपूर्ण लगता है। वे लिखते हैं। बिहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका म—

सेवी जुगल किसोर के प्राणनाथ जी नाव।
सप्तसती तिनसौं पढी वसि सिगार बट गाव।
जमुना तट सिगार बट तुलसी विपिन प्रदेश।
सेवत सत महत जहि देखत हरत क्लेस।

यमुना के तट पर वृन्दावन मे शृगार वट स्थल पर युगल किशोर के सेवक प्राणनाथ जी स कवि ने बिहारी सतसई पढी। यहाँ सत महत शृगार वट वृन्दावन की सदा सेवा म प्रवत्त रहते हैं और इन्ह देखकर समस्त क्लश दूर हो जाते हैं।

सत महतों से सवित वृन्दावन भूमि के शृगार वट पर युगल किशोर जी के सेवक प्राणनाथ जी ने बिहारी सतसई हमारे कवि को पढाई। ऐसे वातावरण मे क्या प्राणनाथ जी ने बिहारी सतसई को शृगार रस का ग्रथ मानकर पढाया होगा? यह स्पष्ट ध्वनि है कि य सभी इस सतसई को धार्मिक ग्रथ ही समझते होगे।

आधुनिक युग मे भी कुछ ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति मिल सकते हैं जो बिहारी सतसई को धमग्रथ मानते हैं। मुझे ऐसा ही प्रसङ्ग स्मरण आ रहा है। मैं दो वप सन ५३ से ५५ तक कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग का रीडर-अध्यक्ष था। वहा काली प्रसाद खेतान बार एट ला से मिलना जुलना होता था। उन्हे हिन्दी से प्रेम था। उन्होन बिहारी सतसई का गम्भीर अध्ययन किया था। बिहारी सतसई' मे इतिहास सामग्री पर उन्होंने कुछ निबन्ध लिख कर प्रकाशित कराये थ, जिन्हें उन्होने पुस्तक रूप मे भी प्रस्तुत कर दिया था। उनका कहना था कि बिहारी सतसई' वष्णव धम की रस बारह भावना से सम्बन्धित धम ग्रथ है। आप विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लोग बिहारी का अध्यापन बहुत गलत करते हैं। उन्होने यह भी कहा था कि *रत्नाकर जी ने बिहारी रत्नाकर मे जो सतसई का रूप दिया है वह पूर्णत* ठीक है क्योंकि वह उन धम की मूल भावनाओ को क्रम स प्रस्तुत करता है।

एक बार एट ला कलकत्ता हाईकोट म वकालत करने वालो म प्रमुख सुप्रीमकोट म भी वकालत करने का जिसे अधिकार जो कलकत्ता के गिने चुने मनीषियों मे माना जाता था वह इसे धार्मिक ग्रथ बता रहा है।

ऐसे ही एक प्रबुद्ध इतिहास विशेषज्ञ डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी जी यह मानते थे और सिद्ध करते थे कि भक्ति कालीन कवियों और रीतिकालीन कवियों में अन्तर नहीं किया जा सकता और यह कहना और भी गलत है कि रीतिकालीन कवि भक्त नहीं थे।

इन आँकड़ों और विचार बिन्दुओं से यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम रीतिकाल विषयक अपनी धारणा पर पुनः विचार करें।

इस युग के राजाओं महाराजाओं के सम्बन्ध में यह धारणा भी आज पुनः विचार चाहती है कि ये विलासी थे और शौर्य समाप्त हो चुका था।

क्या यह बात हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करती कि सिक्ख शूरवीरता के बाने में इसी युग में सजे मराठों का शौर्य इसी युग में चमका। भरतपुर के जाटों ने बड़ों बड़ों को नाकों चने इस युग में चबवाए। महाराजा जसवन्तसिंह का पूरा जीवन युद्ध करते बीता, उसी में उनकी मृत्यु हुई। वीर दुर्गादास इसी युग की देन है। अमरसिंह राठौर ने क्या किसी अन्य युग में साका किया था। इस युग का इतिहास ऐसे वीर पुरुषों की लम्बी परम्परा का साक्षी है। राजस्थान के स्थानीय कवियों के शतशः छंद अन्य वीर राजपूतों की शूरवीरता की यशगाथा गाते हैं। मिरजा राजा जयसिंह का नई रानी के साथ विलास में डूब कर राजकाज पर ध्यान न देने की बात पर भी बहुत बल दिया जाता है और बिहारी के दोहों के चमत्कार पर मुग्ध हुआ जाता है।

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली, कली ही सो बिंधों, आगे कौन हवाल॥

और यह कहा जाता है कि शृंगार रस के रसिक विलास मिरजा राजा जयसिंह ने शृंगार रस के कवि को अपनी प्रकृति से मेल खाने के कारण ही दरबार में आश्रय दिया था और एक दोहे पर एक अशर्फी दी थी। इस युग के कवि दरबारी थे—राजाओं को प्रसन्न करना उनका ध्येय था अतः विलासी थे? अतः शृंगार रस पर लिखते थे—स्त्रियों को निरख परख करके नायिका भेद और नखसिख लिखते थे।

बिहारी के उक्त दोहों में क्या राजा की खुशामद और राजा के प्रसन्न करने की भावना है या शृंगार रस के उद्दीपन का तत्व है। और परिणाम इस दोहे का क्या सिद्ध करता है? कवि राजा को विलास के प्रबल रंग में से बाहर निकाल लाता है।

स्वारथ, सुकृत न, श्रम, वृथा,
देखि विहग विचारि,
बाज, पराये पानि पर तू पछीनु न मारि ।।

म भी सभवत दरबारदारी और खुशामद भरी हुई है । ऐसे ही अन्य कवियों के सम्बन्ध म भी समभना होगा ।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि रीतिकाल विषयक धाराओ पर पुन विचार आवश्यक है ।

रीतिकाल म साहित्यिक कृतित्व के लिए मागदशन सस्कृत साहित्य की दशा दिशा से ही इस काल म मिला क्योकि इस समय हिन्दी की ओर पलडा भुका हुआ होने पर भी सस्कृत साहित्य की धारा निरन्तर प्रवाहित थी । रस गगाधर कर्त्ता पण्डित राज जगन्नाथ अकबर के समय मे ही हुए थ । आइने अकबरी से विदित होता है कि इस समय साहित्य के अन्तगत काव्यशास्त्रीय पक्ष ही मान्य था । अत हिन्दी मे रीति कवियो का मूल स्रोत सस्कृत काव्य शास्त्र ही था । यह बात हिन्दी के रीति ग्रथ प्रणेताओ क कथनो से भी सिद्ध होती है । प्राय सभी ने यह कहा कि सस्कृत कठिन है और सबकी समभ म नही आती अत हिन्दी म विविध काव्य शास्त्रो को मथ कर प्रस्तुत किया जा रहा है ।

'रीतिकाल मे साहित्यिक कृतित्व के लिए मागदशन सस्कृत साहित्य की दशा—दिशा से ही इस काल मे मिला क्योकि इस समय हिन्दी की ओर पलडा भुका होने पर भी सस्कृत साहित्य की धारा निरतर प्रवाहित थी । आइन अकबरी से विदित होता है कि उस समय साहित्य के अन्तगत काव्य शास्त्रीय पक्ष ही मान्य था । रसगगाधर के कर्त्ता पडितराज जगन्नाथ शाहजहाँ के समकालीन थे । यह काल हिन्दी का य शास्त्र का भी उन्नत काल था । हिन्दी के प्रसिद्ध आचाय कुलपति मिश्र ने प० जगन्नाथ से ही काव्य शिक्षा प्राप्त की थी ।[१] इसे यो भी कहा जा सकता है कि हिन्दी के आचाय सस्कृत स काव्य शिक्षा प्राप्त कर हिन्दी के लिए सद्धान्तिक ग्रथो का सृजन कर रहे थे—

---

१ तैलग वेलनाटीय द्विज जगन्नाथ तिरशूल धर ।
शाहजहाँ दिल्लीश किय पडितराज प्रसिद्ध धर ।।
उनके पग को ध्यान धरि इष्ट देव सम जानि ।
उक्ति जुक्ति बहु भेद भरि ग्रथहि कहौ बखानि ।।
—सग्रामसार (कुलपति मिश्र) ११४–१५

संस्कृत को अर्थ लै भाषा शुद्ध विचार।
उदाहरण क्रम ए किए लीजो सुकवि सुधार ।।१०।।

—अलंकार पंचाशिका (मतिराम)

तिन मधि कुवलयानंद मत अर्नो कियो उद्योग।
अलंकार चंद्रोदय निकार्यो सुमति लपि भै जोग ।।

—अलंकार चन्द्रोदय (रसिक सुमति)

—अतः हिन्दी में रीति कवियों का मूल स्रोत संस्कृत काव्य शास्त्र ही था। यह बात हिन्दी के इन रीति ग्रंथ प्रणेताओं के कथन से भी सिद्ध होती है। प्रायः सभी ने यह कहा कि संस्कृत कठिन है और सब की समझ में नहीं आती अतः हिन्दी में विविध काव्य शास्त्रों को मथ कर प्रस्तुत किया जा रहा है।[1]

तब इन साहित्यिक प्रयत्नों को संस्कृत काव्य धारा के रूप में ही स्थान देना होगा। यह एक स्वाभाविक परिणाम था—युग संस्कृत से लोक भाषाओं की ओर मुड़ गया था। इसी विडम्बना पर खेद केशव ने प्रकट किया था कि जिसके घर के दास भी संस्कृत ही बोलते थे उसमें जन्म लेकर भी केशव को हिन्दी में कविता करनी पड़ी।[2] अतः प्रायः प्रत्येक रीतिग्रंथ लेखक की मनीषा देव भाषा संस्कृत से निरन्तर सम्बद्ध रही।

दूसरी बात रीतिग्रंथ रचनाओं की प्रेरणा में हमें सभा में सफलता और सम्मान पाने की भावना भी मिलती है। कई रीतिग्रंथकारों ने यह कहा है कि जो इस पुस्तक को कण्ठहार बना लेगा उसको सभा में नीचा नहीं देखना पड़ेगा और वह सम्मान प्राप्त करेगा। अतः इन रचनाओं का एक उद्देश्य कवि को सभा में चतुर बनाना भी था।[3] पर क्या इसमें यह ध्वनि भी निकलती है कि कवियों को चापलूस और खुशामदी होना चाहिए था, या राज्य के विलास

---

१ सुरवानी याते करी नरवानी मे लाय।
याते मगु रस रीति को, सब ते समझौ जाय ।।

—सुन्दर शृंगार (सुन्दरदास)

२ भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास ।।१०।।

—कवि प्रिया (केशवदास)

३ अलंकार माला जु यह पढ़ै गुनै चित लाय।
बुध सभा परवीनता ताहि देहि हरिराय ।।

—अलंकार रत्नाकर (सूरति मिश्र)

के साथ स्वय भी विलास म डूब जाना चाहिय। सभा चतुर के लिए इन ग्रथो से जिस ज्ञान और जिस कौशल की आवश्यकता सिद्ध होती है वह है काव्य शास्त्र के समग्र रूप को जानना रसराज शृगार पर अधिकार होना और साहित्यिक शास्त्राय दृष्टि से प्रतियोगिता म जीतने क लिए सूक्ष्म म सूक्ष्म भेदो को समझने और उन पर कविता करने और सुनान की क्षमता होनी चाहिय।

राज सभा क रूप का एक विवरण राज शेखर ने दिया है उससे यह कल्पना की जा सकती है कि राज सभा मे केवल कवि और काव्यशास्त्रीय ही नही रहते थे। *विक्रम और अकबर क नवरत्नो की तरह इन देशी नरेशो के* राजदरबारो मे विभिन्न विषय क जानकार सभा म रहते थे।

राजशेखर द्वारा किया गया दरबार का वर्णन डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो म यो है—

हमारे आलोच्य युग के आरम्भ म राजशेखर कवि ने काव्य मीमासा नामक एक विशाल विश्व कोश लिखा था। दुभाग्यवश सम्पूर्ण ग्रथ अभी तक उपलब्ध नही हुआ उसका केवल एक अश ही पाया गया है। इस अश म भी हमारे काम की बहुत बात है। राजशेखर ने राज दरबार क जिस आदर्श का विधान किया है वह सचमुच ही उस प्रकार का हुआ करता था यह विश्वास करन म कोई बाधा नही। राजशखर कहत है कि राजा का कत्तव्य होना चाहिये कि वह कवियो की सभाओ का आयोजन करें। इसके लिए एक सभा मण्डप बनवाना चाहिय। जिसम सालह खम्भ चार द्वार और आठ अटारिया हो। राजा का क्रीडा गृह इसस सटा हुआ होना चाहिए। इसके बीच म चार खम्भो को छोडकर हाथ भर ऊँचा एक चबूतरा होगा और इसक ऊपर एक मणि जटित वेदिका। इसी वेदिका पर राजा का आसन होगा। इसके उत्तर की ओर सस्कृत भाषा क कवि बठेंगे। यदि एक ही आदमी कई भाषाओ म कविता करता हो तो जिस भाषा म वह अधिक प्रवीण हो उसी भाषा का कवि उसे माना जायगा। जो कई भाषाओ म बराबर प्रवीण है वह उठ उठ कर जहा चाहे बठ सकता है। कवियो के पीछे वदिक दार्शनिक पौराणिक स्मृतिशास्त्री वद्य ज्योतिषी आदि का स्थान रहेगा। पूव की ओर प्राकृतिक भाषा क कवि और उनक पीछे नट नतक गायक वादक वाग्जी न कुशीलव तालावचर आदि रहेंगे। पश्चिम की ओर अपभ्रश भाषा क कवि और उनक पाछ चित्रकार लेपकार मणिकार जौहरी सुनार बढई, लुहार आदि का स्थान होना चाहिये। दक्षिण की ओर पशाची भाषा क कवि और उनक पीछे

वश्या, वेश्या लम्पट, रस्सा पर नाचने वाले नट जादूगर जम्भक (?), पहलवान, सिपाही आदि का स्थान निर्दिष्ट रहता।[1]

इस समस्त ऊहा पोह से यह निष्कर्ष निकलता है कि —रीतिकालीन कवि संस्कृत की काव्य शास्त्रीय धारा के उत्तराधिकारी थे और उसी परम्परा को हिन्दी में अवतीर्ण करने के प्रयत्न कर रहे थे। उसी परम्परा के अनुकूल अपनी प्रतिभा को भी सिद्ध कर रहे थे।

२ साहित्य की उस धारा में शृंगार रस को रसराज उक्त परम्परा से ही सहमत होकर माना गया। नखशिख और नायक नायिका भेद रसराजत्व की छत्र छाया के स्वाभाविक परिणाम थे। साथ ही रसराज शृंगार के देवता ही व्रजपति मान लिए गये हैं। देव ने भवानी विलास में लिखा है श्यामा श्याम किशोर जुग पद बंदो जग वंद। मूरति रति सिंगार की शुद्ध सच्चिदा नन्द है।

३ राज दरबारी कवि होने के यह अर्थ नहीं थे कि वे राजा के विलास में पड़कर विलास सहायक या उत्पादक रचनाएं कर रहे थे।

४ राज दरबार में अनेकों विषयों के विद्वान रत्न रहते थे उन्हीं में कवि भी थे। कवि अकेले नहीं थे कि राजा को विलास में डुबाने के लिए रचनाएं करते।

५ दरबारों में ऐसी विद्वत मण्डली के समक्ष सभा को जीतने के लिए कवि को अपना अच्छी प्रतिभा का परिचय देना होता था।

६ अत यह भी निष्कर्ष निकलता है कि शृंगार रस की कविता की प्रमुखता के कारण दरबार नहीं थे, वरन भारतीय साहित्य की दीर्घ परम्परा ही थी।

७ शृंगार रस की रचना का भाव भक्ति के ह्रास का परिणाम नहीं था।

८ भक्ति की धारा ने कवियों को प्रभावित किया जिससे उनके कवि कर्म में एक दिव्यता आ गयी और उनका कवि-कर्म निरर्थक होने से बच गया— *आगे के सुकवि रीझि हैं तौ है कविताई नहीं तो राधा कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।* इससे यह सिद्ध और पुष्ट होता है कि भक्ति की अभिव्यक्ति तो है ही, वह तो कहीं गयी नहीं है, सुकवियों की प्रशंसा भी मिल गयी तो सोने में सुगंध।

इसका लाक्षणिक अर्थ यह भी है कि भक्ति तो अपनी है उसके लिए किसी की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पर भक्ति के साथ कवि की इच्छा

---

१ द्विवेदी हजारी प्रसाद (डा०) हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० १७

कवि' की जैसी प्रतिष्ठा पाने की है। क्योंकि कवि-कर्म एक विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा का साधन होता है।

यहाँ भी यह द्रष्टव्य है कि कवि ने राजाओं के रीझने की बात नहीं कही सुकवि के रीझने की कही है। तो कवि सुकवियों को रिझाना चाहता है उनसे मान्यता चाहता है राजाओं को नहीं रिझाना चाहता। हाँ यदि राजा स्वयं सुकवि है तो बात दूसरी है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि यह बात हमें कुछ संशोधन सहित ही स्वीकार करनी होगी कि कवि नैतिक दृष्टि से इतना हीन हो गया था कि वह राजाओं की खुशामद करता था जीविका प्राप्त करने के लिए और उसका कवि-कर्म राजा को रिझाने के लिए था। वस्तुतः दरबार में कवि का बहुत सम्मान होता था तथा कवि के ज्ञान गौरव और प्रतिभा पर राजा की श्रद्धा रहती थी। इस युग के कई राजाओं के सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि उन्होंने कवि की पालकी में स्वयं कंधा दिया।

हमें यह भी मिलता है कि एक कवि कई कई दरबारों में गया। क्यों? वह गुण-ग्राहक की तलाश में रहा। जहाँ गुण ग्राहक नहीं मिला, वहाँ वह नहीं ठहरा।

अतः इस युग में हमें यह बात दृष्टिगत रखनी होगी कि भक्ति को कवि व्यक्ति धर्म मानता है। काव्यरचना को गुण मानता है और यह मानता है कि गुणज्ञ ही गुण की परख कर सकता है। ऐसा बताइये बिहारी ने ये दोहे किनके लिए लिखे—

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू अतर दिखावत काहि।
चल्यो जाइ, ह्याँ को करै हाथिनु कौ ब्यापार।
नहिं जानत यहि पुर बसैं धोबी, ओड़, कुम्हार।
करत, गंधि मराहिहू सब रहे गहि मौन।
गंधी अंध गुलाब को गँवई गाहकु कौन।

तब वह गुणज्ञ की तलाश में रहा। जहाँ उसे गुणज्ञ मिला वहीं रमा और जब तक उसके गुण की ग्राहकता रही वह वहीं ठहरा अन्यथा अन्यत्र चला गया। यह बात भी तो हमारे सामने इतिहास प्रकट है कि एक कवि को दरबार में रहने के लिए राजाओं में होड़ रहती थी। अतः कवि को मान जाने पर कई राज दरबारों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा था। तब ही कितने ही कवियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है।

स्थिति और सम्बन्ध में यह विचार करने के उपरान्त हमें यह बात भी स्पष्ट होती कि गुण का कला गुणज्ञों से सम्मान का मान्यता (Recogni

tion) या रीझ चाहता है 'भक्ति' ऐसा धम नहीं कि वह अपना प्रदशन करने का प्रयत्न करे, पर वह अभिव्यक्ति के रूप म अपने इष्टदेव के प्रति निवेदित अवश्य होना चाहती है। यह निवेदन पूजा पाठ-जाप ध्यान आदि के द्वारा तो किया ही जाता है पर कलाकार या गुणज्ञ अपनी कला द्वारा भी करता है। इसके लिए वह उसी कला को माध्यम बनाता है, जिस कला या गुण का वह अधिकारी है —

"उलटा नाम जपत जग जाना।
वानमीकि भये ब्रह्म समाना।।"

बाल्मीकि के पास मरा' शब्द ही एक साधन था। इसम उत्तम कोई अन्य साधन नही था अत उसी के माध्यम से उन्होने भक्ति का निवेदन किया।

तुलसी वर्णानामथसघानां रसाना छदसामपि' के प्रतिभाशाली धनी थे, उन्होने इसी के माध्यम से अपनी भक्ति निवदित की। सूर के पास पद का माध्यम था—सगीत का माध्यम था।

रीतिकालीन कवियो के पास कवित्त, सवयो के साथ तथा अन्य छन्द शास्त्रीय रचना ज्ञान था तथा अलकार रस की भेदोपभेदमय साहित्य शास्त्रीय सम्पदा थी व अपनी प्रतिभा और परम्परानुसार इन्हीं के माध्यम स अपनी भक्ति निवदित करते थे। इस प्रकार व्यक्ति-धम भक्ति को काव्य कौशल का माध्यम मिला। काव्य चेतना पर भक्ति भावना आरूढ हुई। ऐसी रचनाओं की काव्य शास्त्रीय परीक्षा की जा सकती है, और सहृदय सुकवि इन कविताओ की गुणात्मकता पर रीझ सकते हैं—यह अतिरिक्त यश कवि को मिलता है उसका यह पक्ष उसके सम्मान का आधार बनता है इस प्रकार यह उसकी जीविका का या पुरस्कार प्राप्ति का भी साधन बनता है। पर उसके मन का ताप, अतमन या आत्मा का तोष तो भक्ति निवेदन स होता है और वह निवदन वह कविता के माध्यम स करता है।

सगुण भक्ति धारा मे भक्ति और कवित्त रस का अद्भुत सम्बन्ध रहा है। इस युग के राधा-कृष्ण आलवित भक्ति-सम्प्रदायों मे युगल-स्वरूप के कारण नायक-नायिका' का जसा, शृ गार रस की निष्पत्ति का योग बनता है। पर इसका एक परिणाम तो यह हुआ है कि नायक-नायिका शृ गार रस की निष्पत्ति नही करत वे भक्ति के ही आलबन बनते हैं और प्रतीत होने वाला शृ गार-रस वस्तुत भक्ति रस ही होता है। फलत काव्य दृष्टि से शृ गार रस का समस्त समायोजन रहते हुए भी भक्ति रस ही निष्पन्न होता है। भक्ति रस का स्थायी भाव भक्ति है, जिसे देव रति भी नहीं कहा जा सकता। भक्ति रति के भाव से प्रकृति और गुण दोनों से भिन्न होती है सगुण भक्ति म ब्रह्म या

भगवान कवि की प्रास्था उसकी प्रात्मा की सत्ता की चेतना का प्राधार है, और यथार्थ है। कवि अपने इष्ट के साक्षात् के माध्यम के रूप में भक्ति को उद्रिक्त करता है। यह भक्ति मूल 'रस नाम के कारण काव्य शास्त्रीय भाषा में भाव' माना जा सकता है स्थायी भाव। पर यथार्थ में कवि के प्रात्म तत्व का वह भावात्मक पक्ष है जो कवि के प्रात्मतत्व को प्लावित करके उस इष्ट की ओर उन्मुख रखता है और प्रास्था के सत्य के साथ सम्बद्ध रखता है। यह भक्ति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष भक्ति का वह है जिसे हम सुविधा के लिए द्वताद्वत कह सकते हैं। यह द्वताद्वत दार्शनिक सिद्धान्त से सम्बन्धित नहीं है। यह कवि और भक्ति के द्वत से सम्बन्धित है। कवि के पास काव्य है पर वह भक्त भी है। मनुष्य यह कब कहता है कि त्वदीय वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पयेत—हे गोविंद तुम्हारी वस्तु तुम्हें समर्पित है। वह यह मानता है कि गोविंद है। गोविन्द की वस्तु है यह गोविंद की वस्तु उस कवि के पास है। वह गोविंद को उसकी वस्तु समर्पित करता है—यह स्थिति इस वक्ता की है। कवि + वस्तु गोविन्द में वस्तु और वस्तु में कवि समर्पित।

जब मैं था तब तू नहिं
अब तू है मैं नाहिं।

यह है द्वताद्वत। मैं वस्तुत तू से वस्तु पाकर ही मैं बना अब इस द्वत को उलटा कर वस्तु को समर्पित करते हुए कवि भी समर्पित हो गया।

यह रूप भी भक्ति की गुणात्मकता की दृष्टि से कोई हीन रूप नहीं वरन् अधिक यथार्थ भूमि पर है। इस द्वताद्वत भक्ति के रूप में ही यह समीकरण प्रतिफलित होता है
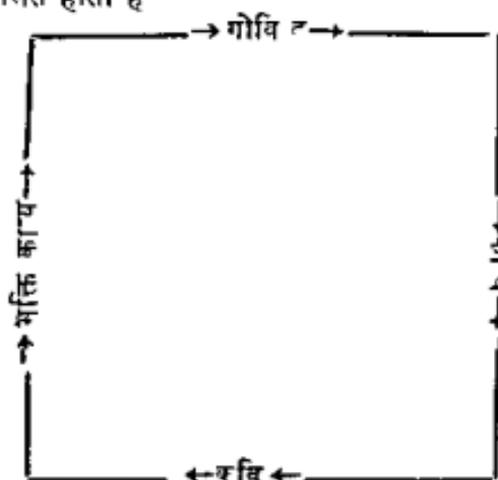
कवि + काव्य (गोविन्द की वस्तु) + गोविन्द। कवि गोविन्द की वस्तु काव्य गोविंद को समर्पित करता है और उसके माध्यम

से अपनी भक्ति सिद्ध कर गोविन्द मे अद्वैत सम्बन्ध स्थापित करता है । कवि के पास का य है—ईश्वर प्रदत्त है वह यह कवि की मज्जागत आस्था है । ईश्वर प्रदत्त इस वरदान का उसे पूरा ज्ञान है—छद, अलकार रस=वर्णानामथ मधानाम् रसानाम् छन्दसामपि—सब का ज्ञान है उसे । इस वस्तु का भक्त होने के कारण वह अपने इष्ट को समर्पित कस करें ? ईश्वर की स्तु काव्य उसके पास है रस हैं-नवरस, अलकार हैं-इनका शास्त्र ज्ञान है और शास्त्र भी है । स्वय उसे इसका ज्ञान है ।

इसका ऐहिक उपयोग भी वह कर लेता है पर अ तरग भक्ति की भावना से गोविंद की वस्तु को गोविन्द से दूर कम रखता अत वह काव्य को काव्य रखता है और उसी रूप मे उसे गोविद की वस्तु बना देता है । सूरति मिश्र की साक्षी इस सम्बन्ध मे लीजिये —

> सूरति सुकवि सुनौ यहै, फुर जु कविता रीति ।
> तौ प्रभु गुन ही वरनियै जौ हिय बस सुख प्रीति ।।५८।।

का य सिद्धान्त सूरति मिश्र ।

इसी सदभ मे सूरति मिश्र विरचित रसरत्न टीका की अ तिम पुष्पिका भी दृष्ट य है

> सत्रह सौ इकतिस वरस, सुखद फाल्गुन मास ।
> सुकल पच्छ सात भयो, घर मे अति उल्लास ।।
> बडे भये विद्या पढी, कवि कोविद के साथ ।
> साधु सत सिच्छा दई, सूरति भये अनाथ ।।
> जगत जनम सुभकरन कौ, की हौ प्रभु गुन-गान ।
> कृष्ण राधिका के चरित, रचे हृदय धरि ध्यान ।।
> ईस भजन सिंगार अरु, कवित्त रीति को ज्ञान ।
> सूरति मन सतोष प्रति, मिलौ महा सम्मान ।

सूरति मिश्र की साक्षी भी यही सिद्ध करती है कि ईश भजन (भक्ति)+शृ गाररस+कवित्त रीति—यह था रीति-कवियो का फामू ला । नाम के माहात्म्य का भी लाभ कवि ने उठाया

> जिन ग्रयन मँह कवित मे, आव हरि को नाम ।
> सो वह शुभ सूरति सुकवि, अति पवित्र सुख धाम ।।

यद्यपि डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने इसे अप्रामाणिक माना है फिर भी इसमे युग-सत्य निहित है । नाम माहात्म्य का सहारा लेकर ही नायक नायिका को राधा-कृष्ण मानने का विशेष भाव कवि मे मिलता है । शृ गार

रस में भक्तिरस की झिलमिली प्रस्तुत कर देता है। इसी प्रकार अन्य अंगों में भी यह शृंगार रस नवरसों में रसराज के रूप में रहता है।[1] वह भक्ति में विसर्जित नहीं होता, पर उसके अंतरंग में भक्ति झांकती अवश्य है। प्रत्येक रस, प्रत्येक अलंकार, प्रत्येक छन्द, प्रत्येक 'वर्णानामर्थसंघानां' में भी वह समर्पण झांकता है। बिहारी का यह दोहा—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाइं परै, स्यामु हरित दुति होइ॥

इस दोहे का अर्थ करते समय काव्य शास्त्रार्थी अलंकारों और उनसे प्राप्त विविध अर्थों के चमत्कार में उलझ जायगा। एक एक शब्द पर साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से विशद विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पर कवि की भक्ति भावना इसमें पोर पोर में झलकती है। इसी प्रकार अन्य कवियों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। अभी २३ मार्च ७३ को डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जी से चर्चा हो रही। उन्होंने इस काल के कवियों के सम्बन्ध में कहा कि इनके समस्त काव्य शास्त्रीय कृतित्व में कवि की आत्मा

---

१ यहाँ देव का वह कवित्त ध्यान में आता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि शृंगार रस का सार है—किशोर किशोरी है यह छन्द—

'देव सबै सुखदायक सम्पति,
सम्पति को सुख दम्पति जोरी।
दम्पति दीपति प्रेम प्रतीति
प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति तहां गुणरीति विचार
विचार की बानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो शृंगार
शृंगार को सार किशोर किशोरी।"

सुख सागर तरंग ([illegible])

इसमें भी आगे देव कहते हैं—

'माया देवी नायिका नायक पुरुष आप।
सब दम्पतिनि में प्रगट, देव करै निज जाप।"

सुख सागर तरंग ([illegible])

रीतिकालीन एक महान कवि के इस उद्गार का कोई अर्थ तो होना ही चाहिए। स्पष्ट है कि भक्ति की भावना बद्धमूल है और वह काव्य में प्रतिबिम्बित है।

नही रमी—वह तो किसी और सौदय पर मुग्ध है। वे घनानन्द की पक्तियाँ बोलते हैं—'उन पायन की नेंक धूरि आन दे।"—उनका अभिमत है कि यह अदम्य भावना क्या बताती है—व अब देव के छदो का प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें जो आत्मा की आवाज है वह उनकी शास्त्र-चर्चा या रीति चर्चा म कहाँ है ? वे यह भी मानते हैं कि इन कवियो की भाषा लोक भाषा है और लोक के भक्ति समन्वित हृदय से ही इन कवियो का तादात्म्य है, इनकी आत्मा वही रम रही है। उपाध्याय जी भी यह मानते हैं कि अब रीतिकालीन काव्य के पुनमूल्याकन की आवश्यकता है। आधुनिकतावादी डा० उपाध्याय के इस मत को हमने यहा इसीलिए टाका है कि इन कवियो की आत्मा म उन्हे भी भक्ति की सरसता मिलती है।

इसी रीति धारा के कवि हैं हमारे हरिचरणदास। ये बिहार के एक गाव से चलकर वृन्दावन आये। वहा भक्ति भाव से गुरु प्राणनाथ की सेवा की। वहा कितने हा सत महत रहते थ। ऐसे वातावरण म गुरु प्राणनाथ स इन्हाने बिहारी सतसई का अध्ययन किया। इनका विशेष निवास किशनगढ रहा। किशनगढ का पूरा घराना—राजा भी और रानी भी भक्त थे—कोइ बल्लभ सम्प्रदाय का तो कोई निम्बार्क सम्प्रदाय का। निम्बार्क सम्प्रदाय की परशुराम देवाचार्य की गद्दी तो किशनगढ के पास सलेमाबाद म है। तो हमारे हरिचरणदास किशनगढ़ आकर बसे। यहा भी वे भक्ति भावना के वातावरण मे थे। किशनगढ राजघराने से कितने ही कवियो का सम्बन्ध रहा है। इनम से कितने ही रीतिग्रथ लेखक थे। इस प्रकार एक भव्य साहित्यिक और भक्ति प्लावित वातावरण म हरिचरणदास ने साहित्य सृष्टि की। इनके ग्रंथों म से एक छोटी सी रचना माहन लीला जो एक प्रकार से अप्राप्य ही थी, यहाँ प्रकाशित की गयी है। उपर की विवेचना से यह ता स्पष्ट है कि 'मोहन लीला म भक्ति भावना की झिलमिली और काव्य शास्त्र-बद्ध काव्य का ढाचा है।[1]

मोहन-लीला की विषय-वस्तु पर ध्यान जाते ही कवि के उल्लेख मे ही विदित होता है कि उसने यह लीला भागवत के अनुसार लिखी है। कही-कहीं कुछ छोड दिया है। कहीं कुछ परिवतन या परिवद्धन भी है। कवि ने

---

१ सूरति मिश्र का यह दोहा इसी स्थिति का सूचक है —
"कवि ताही कूँ कहत हैं, समुझै कविता अग।
अज सविता गुन जा कहै, तौ छवि ता प्रति अग।"

बताया है—

"जाथो ग्राम मनुसार क्रम घटियद्रि में कहूँ मीन।"
जहाँ मगन जाको मन स हैं ताय प्रवीन॥१७६॥
पृ० ७२

मूल ग्रंथ में भी कहीं-कहीं भागवत स ग्रन्तर की ओर ध्यान आकर्षित किया है—यथा दावाग्नि पान का वणन करन के उपरा त ग्रंथ रितु वर्नन 'रितु वर्नन करि पाछ, प्रसगबध दावाग्निपान कहेंगे। इहां कछु भागवत के क्रम सों बीच हैं। पृ० २४

इस मोहन लीला मे यह क्रम इस प्रकार है

१ हरिगुरु की वन्दना नन्दलाल के रूप का आवरण ३ कवि-नन्दिनी स्तुति ४ वन्दावन वणन ५ सांत (शान्त) रस ६ श्री कृष्ण की सुन्दरता का वणन ७ जन्मोत्सव इसी विषय पर कवि ने अपने पूवरचित भागवत सार का एक छन्द उद्धृत किया है। ८ पूतना को प्रसग। ९ नन्द आदि गोपो का कर देन मथुरा जाने का गद्य म उल्लेख १० सकटासुर-बध ११ तृणावत-बध १२ यशोदा को मुख म सम्पूर्ण विश्व दिखाया १ राधा जन्म भादौं शुक्ला अष्टमी को १४ भादौं शुक्ला एकादशी को यशोदा न जल पूजन किया १५ नामकरण १६ बाललीला १७ ढिठोना वणन—दसम घर मे कृष्ण की बाललीलाओ और बाल क्रीडाओ का वणन है। १८ उराहनो—पहले गद्य म टिप्पणी दी है कि जब यशोदा क पुत्र नहीं थ तो व देखती थीं कि किसी पुत्रवती को उसके पुत्र की करतूतो के कारण उलाहन आते हैं। ऐसे उलाहन सुनन की तब यशोदा म हौंस होती थी। उसी सुख के लिए गोपियाँ कृष्ण के उलाहने यशोदा के पास लाती हैं—तब एक छन्द म उलाहने का उल्लेख है। १९ बतीसा २० मृत्तिका भक्षण तथा मुख में सम्पूण विश्व दिखाना २१ दामोदर लीला इन्द्र की पूजा की मिठाई कृष्ण ने झूठी करदी क्रुद्ध हो यशोदा न उन्हे ऊखल स बाध दिया जिससे उन्होने यमलाजु न का उद्धार किया। गद्य मे यह उल्लेख कर दो छन्दो म लीला का वणन है। इनमे से एक छद इन्होंने अपनी पूवकृति भागवत प्रकाश म दिया है। २२ ब्रज देवी कृष्ण को नचाती है। २३ वन्दावन गवन २४ वन्दावन वणन २५ वत्सासुर बध २६ बकासुर बध २७ भादौं कृष्णा द्वादशी से बछरा चरान लग २८ छाक लीला २९ अघासुर बध, ३० वत्सारण ३१ ब्रह्मा द्वारा स्तुति ३२ गोचारण लीला कार्तिक शुक्ला अष्टमी को कृष्ण गाय चराने लगे

३३ धेनुक बध ३४ कालियलीला ३५ दावाग्निपान ३६ रितु वरणन, वसंत ग्रीष्म वर्षा, शरद, शीत, शिशिर ३७ वसंत पंचमी ३८ होरी ३९ प्रलंब बध ४० मुंज वन की दावाग्नि का पान ४१ वरुगीत ४२ चीर हरण, ४३ द्विज पत्नी प्रसंग ४४ गोवर्द्धन धारण लीला यहाँ पर अपनी पूर्ववृत्ति भागवत प्रकाश के भी कुछ छंद दिये हैं। ४५ नन्द जी को वरुण के दूत ले गये ४६ गोपों को मोक्ष रक्षा दिखाना ४७ रासलीला, तुलसी से गोपिया कृष्ण का पता पूछती हैं पग चिह्नों से चिन्हित हुआ कि कृष्ण एक गोपी के साथ गये, बाद में उसे भी छोड गये तब सभी के विलाप करने पर कृष्ण प्रकट भये। ४८ रास नृत्य, ४९ जलकेलि, ५० सुदर्शन यक्ष का प्रसंग ५१ शंखचूड का बध ५२ युगलगीत ५३ अरिष्टासुर बध ५४ केशी बध ५५ व्योमासुर बध ५६ अक्रूर आगमन ५७ कृष्ण प्रयाण ५८ कृष्ण बलदेव मथुरा देखने गये ५९ कुबलयापीड का मारना ६० मल्ल युद्ध, ६१ कंस बध ६२ नन्द की विदा—

"विदा देत हरि नन्द कौं जो दुख उपज्यौ आय।
पाहन तैं ह्वैं कठिन हिय तामौं वरन्यो जाय॥"

अथ माहात्म्य तथा कवि परिचय।

कवि ने मोहन लीला में कहीं-कहीं तो एक ही प्रसंग में कई छंद रखे हैं। कहीं गद्य वार्ता से काम चलाया है, कहीं एक ही छंद कवित्त-सवैया या दोहा देकर ही प्रसंग समाप्त कर दिया है।

मोहनलीला' के माहात्म्य वर्णन में कवि ने बताया है कि —

सब सुख अवनी में मिलें, सखा कान्ह कौ होय।
पढ़ै सुनै ताको सदा पूरन ह्वैं है सब काम॥

कवि ने दो प्रसंगो के पढने का भी माहात्म्य बताया है—

रासराति हरि जन्म दिन या मैं पढ़ै जु कोय।
सुनैं पाठ ताके हिए, मोहन परगट होय॥

पढने सुनने वालों को ही फल प्राप्ति नही, स्वय कवि अपने लिए भी कामना कर रहा है—

प्रेम भक्ति द्यौ मैं नही चाहत हौं निरवान।

'मोहन लीला' के पढने सुनने से समस्त रोग नष्ट होते हैं गोविन्द में मन लगता है, अनायास योग की प्राप्ति हो जाती है। तुलसी का सेवन, वृन्दावन का बास, यमुना का तट तथा राधा-हरि का दासत्व सभी मिल जाते हैं।

यह माहात्म्य वर्णन भी इस छोटे से ग्रंथ को भक्ति का पोषक सिद्ध करता है।

कवि ने 'मोहन लीला' से पूर्व भागवत प्रकाश—ग्रंथ भी लिखा था। यह अवश्य ही बड़ा ग्रंथ होगा। प्रश्न उठता है कि भागवत प्रकाश के बाद भागवत के आधार पर ही 'मोहन लीला' क्यों लिखी ? इसका उत्तर हम सूरति मिश्र लिखित कृष्ण चरित की पुष्पिका से मिलता है। सूरति मिश्र ने कृष्ण जन्म से लेकर द्वारिका में विराजने तक की पूरी लीला केवल ११ छंदों में दी है। कवि ने बताया है कि—

ए चरित सेस दिनेस श्री गनेस हिय अभिराम है।
सूरति सुकवि श्री भागवत को ध्यान यह सुखधाम है॥

कवि ने ग्यारह छंदों में यह कृष्ण चरित भागवत के ध्यान के लिए लिखा। भागवत का ध्यान भी भक्ति का एक प्रमुख सोपान है। पर हरिचरण दास ने तो मोहन लीला में व्रज-वृन्दावन की लीलाओं का ही वर्णन किया है। कृष्ण कंस को पछाड़ देते हैं। उसके बाद नन्द को विदा देते हैं। व्रज की करुण दशा की एक झाँकी देकर मोहन लीला समाप्त हो गयी है। यह मोहन लीला वस्तुतः साक्षात मोहन के ध्यान के लिए लिखी गयी है। हरिचरणदास कृष्ण को सखा रूप में चाहते हैं और उनकी प्रेमाभक्ति चाहते हैं यह इस कृति से स्पष्ट प्रकट है। भागवत प्रकाश भागवत का अनुवाद जैसा होगा पर मोहन लीला ! यह तो भागवत के मोहन की लीलाओं का कवि द्वारा अपनी कविताओं के माध्यम से पुनीत स्मरण है। यह भी भक्ति का एक सोपान है।

कवि की कविता के रग रग में कृष्ण रमे हुए हैं। यह द्रष्टव्य है कि कवि ने तुलसी में समस्त तीर्थों का वास माना है। वह तुलसी हरि चरणों में अर्पित है कवि उन्हीं चरणों को अपने हृदय में स्थान देना चाहता है।

यही सब तीर्थों से युक्त तुलसी-दल की माला भी कवि ने कृष्ण के गले में डाल दी है और वे मुरली धारण किए हुए राधा के साथ वन में विचरण कर रहे हैं।

उस समय कृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

बान कटाछ कमान सी भौंह अनंग के चारु निषंग बिलोचन।

यहाँ कवि का काव्य मचल उठा और कटाक्ष का बान मारकर कटाक्ष निधान बिलोचन को 'अनंग का चारु निषंग' बना दिया है। कृष्ण कोटि काम

लजावन हार तो हैं ही, पर स्वय कामदेव भी हैं। उनके पुत्र प्रद्युम्न भी साक्षात कामदेव माने गये हैं। यहा पर शृ गार रस की रसवत्ता है, रति का भाव पूर्णत परिपक्व है और कवि का कवित्व रस अलकार सौष्ठव और अधिक छलक उठा है। काम के तरकस के ये कटाक्ष वाण हृदय म काम पीडक न बन कर भक्ति उत्तेजक बन गये हैं। तभी राधा कृष्ण की क्रीडा और शोभा को देखकर

'होत खुशी ललितादि सखीगन

कवि ने बताया है कि कलिंद-नन्दिनी यमुना की धार कम-बघन काटने के लिए 'तरवारि है—तथा

छूवत नकु नीर पावै पुन्य को सगीर
पाप रहै एको मासा न बतासा जैसे पानी मैं।

तो यमुना तीर भी तीर्थ है, पर तुलसी म ता सभी तीर्थ वास करते हैं—उसे धारण किये हैं कृष्ण फिर 'काम' का सौन्दय भी भक्ति के लिए उद्दाम उद्दीपन हो जाय तो आश्चय क्या ? कवि की काव्योक्तियाँ और कवित्तरस अन्य रसो को भी कृष्ण भक्ति की उज्ज्वल जलधारा म आप्लावित करा रहा है—यहाँ कवित्व भी जसे कृताथ हो रहा है—कवि यहाँ कवित्व के समस्त अगो से युक्त होकर उनम डूब कर उनके परम ग्रथ के माध्यम से तिरकर पार उतर गया है—बिहारी ने कहा था

तन्त्रीनाद, कवित्त रस, सरस राग, रति रग।
अनबूडे बूडे तिरे, जे बूडे सब अग।

अन्य रसा म 'शान्तरस' भी तो है कवि कहता है कि 'शान्तरस का निर्वेद भी असफल रहेगा

ज्यों मन मे न कलिंद सुता तट खेलत नद को नन्दन आयो।

इस प्रकार जब कवि यह कहता है कि

पारति है कुल देव के पायँ पर कुलदेव गोपाल के पायन।

यशोदा तो मातृ-ममता मे पगी पुत्र के कल्याणाथ उन्हे कुल देवो के चरणो म डालती है, इस विनता के साथ कि आप इस मरे अत्यन्त प्रिय बालक की रक्षा करें। पर कुल देवता तो जानते हैं कि ये कौन हैं ? अत वे स्वय बाल-कृष्ण गोपाल के चरणों म पडते हैं। कुल देवताओ का गोपाल के चरणो म गिरने की क्रिया यशोदा को दिखायी नहीं देती वह तो लौकिक पूजा करते

निश्चित हो जाती है, पर उतना ही सब कुछ तो यथार्थ नहीं है वह यथार्थ कवि को दिखायी पड़ता है। उसकी काव्योक्ति लौकिक पूजा के व्यवहार को भी 'कृष्णार्पण' कर देती है। यह उक्ति भी सार्थकता प्राप्त करती है।

कवि कुछ अनूठी उक्ति भी कहना चाहता है। शिशु कृष्ण ने अपने पर का अगूठा मुँह म दे लिया है—महाकवि सूर ने भी देखा था

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढे पालने अकेले, हरषि-हरषि अपने रग खेलत।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यो सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग दतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए, भुव कपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत॥

सूर को कृष्ण ब्रह्म का वह रूप दिखायी पड़ा जो प्रलय के पश्चात विशाल जल राशि मे तैर रहा था—एक पत्ते पर बाल-ब्रह्म मुँह मे अगूठा दिये हुए। सूर ने त्रिदेवो के लिए सकट खड़ा कर दिया—पर इस कवि की दृष्टि एक अन्य बात पर गयी, जो भक्ति-तत्व से विशेष सम्बद्ध है। बालक अँगूठा चूसता है। अगूठा मुँह मे देने की क्रिया के लिए ही अगूठा मुँह मे नहीं दिया जाता उसका अर्थ भी है कि बालक उसे चूसना चाहता है। भगवान की प्रत्येक क्रिया सकारण होनी चाहिये? तो कृष्ण अपने पर का अगूठा क्या चूसना चाहते हैं? जलसे अँगूठा धोकर चरणामृत बनता है। इस चरणामृत का भक्त और साधु बहुत बखान करते हैं—उसका बहुत यश गाते हैं—उसकी एक बूँद के लिए भी निहोरा करते हैं। ऐसा क्यो करते हैं? उनकी बातो मे क्या सार है?

सतन की बानी ताकि पारखि कौ ठानी कहैं,
साची कधौ झूठी यौं अ गूठौ पाय को पिऐं।

यौं शब्द से इस उक्ति को कवि ने काव्योक्ति ही बना दिया है पर भक्ति के प्रति कृतार्थता का भाव इसमे अवश्य समाया हुआ है।

इन कुछ उदाहरणो से यहाँ उस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है जिससे कवि का काव्य भक्ति को समर्पित हुआ है। 'काव्य' के मान दण्ड काव्य शास्त्र से निर्धारित होते हैं और सुकवि उनके आधार पर ही किसी काव्य पर रीझता है। भक्ति की भावना का कृतित्व उन मानदण्डो से नही परखा जा सकता। दो भिन्न तत्व हैं। इस युग का कवि दोनो को समन्वित कर चार चाँद लगाना

चाहता है। पर 'काव्य की परीक्षा तो सुकवि ही करेगा, भक्ति भावना की साधना कवि की अपनी है—तभी वह कहता है कि मेरी रचना मेरी भक्ति भावना की साधना की दृष्टि से तो सफल है क्योंकि 'राधिका कन्हाई का स्मरण है इसमें, पर इसमें मैंने जो कवित्व' भी खड़ा किया है उसकी सफलता तो सुकवि के रीझने पर ही है

जो पै सुकवि रीझि है तो कविताई ।।

मैं कवि तभी माना जाऊँगा, जब सुकवि रीझेंगे पर यदि सुकवि न रीझे तो ? न रीझें मेरी भक्ति तो सिद्ध होती ही है। यह कवि उस भक्ति को सिद्ध करने के लिए काव्य का आश्रय लेता है-सुकवि रीझें काव्य भी उत्कृष्ट माना जाय और उसमें प्रतिष्ठित भक्ति तो सिद्ध है ही—या सोने में सुगन्ध भरना चाहता है कवि।

इसी परम्परा का अनूठा काव्य यह 'मोहन लीला' है, जिसके माध्यम से कवि ने कृष्ण की ब्रज-लीला का ध्यान किया है। काव्योक्तियों को कृष्ण भक्ति की पावन धारा में स्नान कराके कवि ने मोहन लीला' प्रस्तुत की है।

प० कृपाशंकर तिवारी ने परिश्रमपूर्वक यह पुस्तक प्राप्त की और इसका पाठ प्रस्तुत किया। जहाँ तक ज्ञात हुआ है अभी तक इसकी एक ही प्रति हाथ आयी है और यह प्रति ही तिवारी जी ने प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर दी है। अतएव इस अलभ्य कृति को सुलभ बना कर प्रो० तिवारी ने बड़ी कृपा की है मैं ऐसा मानता हूं। मैं इसे कृपा इसलिए कहता हूं कि मोहन लीला भागवत ध्यान विषयक एक परम्परा की महत्वपूर्ण कृति है। इसके माध्यम से ध्यान परम्परा' के साहित्य की ओर विद्वानों और भक्तों की भी दृष्टि जायगी। यह कृति सुकवि और भक्त दोनों को भायगी। मेरे लिए यह कृपा इसलिए भी है कि कृपाशंकर' ने कृपापूर्वक मुझसे इसकी भूमिका लिखने का आग्रह किया—यथार्थ यह है कि मोहन लीला' के छपवाने की शर्त ही उन्होंने इसे बना दिया जिससे मुझे भूमिका लिखनी पड़ी और इस बहाने रीतिकालीन 'काव्यमय भक्ति' पर एक दृष्टि डालने का अवसर मिला।

प्रो० कृपाशंकर तिवारी राजस्थान विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं, जिन्हें उच्च हिन्दी शिक्षा का २० वर्ष से कम का अनुभव नहीं है। पर ये मौन साहित्य साधक हैं। इन्होंने एक अच्छा हस्तलेख भण्डार बना लिया है। उसके आधार पर 'हिन्दी साहित्य के इतिहास की असंशोधित कड़ियाँ' नाम का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ भी आपने तयार किया है। इनका यह समस्त कृतित्व तो शोध-क्षेत्र को महत्वपूर्ण योगदान ही माना

जायेगा। पर प्रो० कृपाशकर तिवारी को जो निकट से जानत हैं, वे इस बात से प्रभावित हुए बिना नही रह सकते कि वे राय कृष्ण दास और वियोगीहरि की परम्परा के गद्यकाव्य लेखक भी हैं, और ऐसे गद्यका०यो म वे अपन अपन अनुभूत तत्वा को अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ किसी (?) को समर्पित करते हुए या किसी को सबोधित करते हुए भावनाभिभूत श ावली से— श ार्थो सहितौ काव्य' का भी सृजन करते जात हैं— गद्य म। पर उसे प्रकट करने मे लाजवती की सी लज्जा स युक्त हो जात है—उसकी भनक भी किसी को कानो मे नहीं पडने देते।

एसे प्रो० तिवारी ने मोहन लीला' को प्रकाशित करान का सकल्प किया तो कृपा ही तो की और अब तो वे हि ी साहित्य के इतिहास की असशोधित कडिया नामक पुस्तक का प्रकाशन भी मेरे आग्रह से करान को तत्पर हो गय हैं।

प्रा० तिवारी जी के इस काय के सपादन म सबस बडा और महत्व पूर्ण योगदान डा० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ का है। ये भी राजस्थान विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अनुस धान अधिकारी हैं। वहाँ का गम्भीर उत्तरदायित्व निबाहते हुए ये तिवारी जी की शोध क सम्पादन मे तत्परता पूवक सन्नद्ध रह हैं। इनक सहयोग का ही यह सुफ्ल है कि तिवारी जी इन ग्रथो को प्रकाशित करान के लिए फुसलाय जा सके।

प० कृपाशकर तिवारी जी पर भी ये कुछ पत्तिया मुझे इसी कारण लिखनी पडी कि अज्ञात ग्रथ के सम्पादक भी कही अज्ञात न रह जायें। क्योंकि वे स्वय तो अपने सम्ब ध म कुछ कह नहीं पाते। अत कृति और कृतिकार के परिचय के साथ उसक सम्पादक का परिचय भी मुझे दना चाहिए—ऐसा मैंने माना।

अब यह पुस्तक प ठका को समर्पित है।

डा० सत्ये द्र
निदेशक,
राजस्थान हि ी ग्रथ अकादमी
जयपुर।

नवरात्र स्थापना दिवस
४ अप्र ल, १६७३

आचार्य हरिचरणदास

आचाय हरिचरण दास आचाय कवि टीकाकार, कोषकार के रूप में हिन्दी साहित्य के इतिहास म प्रकट हुये। इन्होंने खण्डन मण्डन की दृष्टि से 'काव्य शास्त्र', उत्कृष्ट कोटि की कविता, पाण्डित्यपूण टीकायें तथा महत्वपूण कोष ग्रथो का सृजन किया। हिदी साहित्य जगत मे इस प्रकार के महत्वपूण योगदान क बाद भी इहे महत्वपूण स्थान नही मिल सका। हिन्दी के अनेक महत्वपूण उच्चकोटि तथा एतिहासिक ग्रथो प० रामचद्र शुक्ल (हिदी साहित्य का इतिहास), डा० रामकुमार वर्मा (हिदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) डा० भगीरथ मिश्र (हिदी काव्य शास्त्र का इतिहास), नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिदी साहित्य का वहत इतिहास (षष्ट भाग) म उल्लेख तक नही मिलता है। समय समय पर विद्वानो ने इनके सम्बध मे विचार प्रकट किय हैं। इन विचारो मे हमे मतक्य नही मिलता है।

हमे हरिचरण दास के सम्बध म सव प्रथम उल्लेख शिवसिंह सरोज'[१] मे मिलता हैं जिसमे 'भाषा साहित्य का महासुदर, अद्भुत, अपूव वृहत कवि वल्लभ नामक एक ग्रथ के सम्बध में लिखा है साथ ही खोज म प्राप्त (१) कवि प्रियाभरण (२) चमत्कारचद्रिका या भाषाभूषण की टीका (३) बिहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका, (४) कवि वल्लभ (५) सभा प्रकाश, ग्रथो का उल्लेख किया है। मिश्र बधुओं ने 'मिश्रबधु[२] मे हरिचरणदास का उल्लख किया है। इसम इहोंने इनके निम्नलिखित ग्रथो का उल्लेख किया है—

(१) कवि प्रिया की टीका

(२) रसिक प्रिया की टीका

(३) बिहारी सतसई की टीका

---

१ सेंगर शिवसिंह शिवसिंह सरोज पृ० ३४४

२ मिश्रबधु मिश्रबधु विनोद भाग १ (खण्ड १, २), पृ० ४३२

(४) भाषाभूषण की टीका

(५) सभा प्रकाश, तथा

(६) कवि वल्लभ

उपर्युक्त ६ ग्रंथों में से तीन ग्रंथों का रचना काल भी दिया है-सभा प्रकाश की रचना १८१४ सतसई टीका १८३४ में कवि प्रिया की टीका १८३५ में। उन्होंने कवि प्रिया की टीका छतरपुर दरबार के पुस्तकालय में देखी थी। शेष पुस्तकों का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के आधार पर किया है। इन्होंने इनके पाण्डित्य की प्रशंसा की है और तोष कवि की श्रेणी में समझा है। मिश्रबन्धुओं के अतिरिक्त मोतीलाल मेनारिया[२] शिवपूजन सहाय[३] डा० जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन[१] आचार्य नलिन विलोचन शर्मा[४] ने इनके जीवन साहित्य के सम्बन्ध में संकेत किये हैं।

हरिचरणदास का यथार्थ उद्घाटन १०-१२ वर्ष पूर्व ही हुआ है। इधर इनकी ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है[५] ब्रज साहित्य का इतिहास जो नवीनतम अनुसंधानों के आधार पर प्रस्तुत इतिहास है इसमें डॉ० सत्येन्द्र[६] ने हरिचरणदास के निम्न लिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है—

---

१ ग्रियर्सन जार्ज अब्राहम (डा०) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास पृ० ३१७ ३३६ ३३७

२ मेनारिया मोतीलाल (अ) राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा पृ० २३२
(ब) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० २४७
(स) राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १४४ १४५

३ सहाय शिवपूजन (अ) हिन्दी साहित्य और बिहार (प्रथम भाग) पृ० १७६
(आ) वही (द्वितीय भाग) पृ० ३३१

४ शर्मा नलिन विलोचन आचार्य—साहित्य का इतिहास दर्शन पृ० २४४ २४६

५ (अ) शर्मा गोपाल—काल के अन्तराल में डूबे हुए कवि हरिचरणदास—साहित्य संदेश (जून १९५९)
(ब) दीक्षित आनन्द प्रकाश (डा०) हरिचरण दास और उनकी विरुदावली परिशोध (१९६६)

६ सत्येन्द्र (डा०) ब्रज साहित्य का इतिहास पृ० ४०१

अ–टीकाएँ—(१) केशव कृत रसिक प्रिया की टीका
(२) केशव कृत कवि प्रिया की टीका
(३) बिहारी सतसई की टीका
(४) महाराजा जसवंतसिंह के भाषा भूषण की टीका

आ–कोष— (१) 'कर्णाभरण'

इ–शास्त्र ग्रंथ—(१) सभा प्रकाश
(२) बृहत्कविवल्लभ
(३) भाषा दीपक

डा० सत्येन्द्र ने अपने इतिहास की दूसरी पाद टिप्पणी में लिखा है 'भाषा दीपक का उल्लेख श्री शिव पूजन सहाय जी ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य और बिहार' में नहीं किया। इसी ग्रंथ में आचार्य शिवपूजन जी ने मोहन लीला रामायणसार और भागवत प्रकाश का और उल्लेख किया है, पर ये ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं।'[1] किन्तु राजस्थान में अब इनके प्राय सभी ग्रंथ उपलब्ध हैं इनसे कुछ और बातें भी ज्ञात होती हैं—

(अ) मोहन लीला ग्रंथ से इनके 'रामायण सार' और 'भागवत प्रकाश नामक दो ग्रंथो का पता चलता है।

(आ) बृहत्कर्णाभरण भी कवि ने बताया है।

'श्रुति भूषण नानाथ की पहले रचना कीन
अनेकाथन लिख्यो इहा लखि है सुकवि प्रवीन'

इससे विदित होता है कि इन्होंने श्रुति भूषण ग्रंथ नामक अनेकार्थ नाम माला पहले रची थी। यह श्रुति भूषण भी अब उपलब्ध है।

इस प्रकार अब हरिचरणदास जी के कुल ग्रंथ ८+४=१२ हो गये हैं। एवं लघु कर्णाभरण भी मिला है, पर इसे स्वतंत्र ग्रंथ नहीं माना जा सकता।

हरिचरणदास की विविध रचनाओं के रचना-काल तथा अन्य बातो की जानकारी के लिये विविध ग्रंथों से पुष्पिकायें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

---

१ सत्येन्द्र (डॉ०) ब्रज साहित्य का इतिहास पृ० ४०१

(१) कविप्रिया की टीका 'कविप्रियाभरण' मे—

अथ कवि की स्थिति-दोहा

राजत सुबे विहार मैं है सारन सरकार,
सालग्रामी सुरसरित सरजू सोभ अपार ॥१॥

सालग्रामी सरजू तह मिली गग सौं जाय ।
अतराल मे देस सो हरिकवि को सरसाय ॥२॥

परगना गोवा तहा गाव चनपुर नाम ।
गगा सो उत्तर तरफ तह हरि कवि को धाम ॥३॥

सूरजपारी द्विज सरस वासुदेव श्रीमान् ।
ताको सुत श्री रामधन ताको सुत हरि जान ॥४॥

नवापार मे ग्राम है वढया अभिजन तास ।
विश्वसेन कुल भूप वर करत राज रति मास ॥५॥

मारवाडि मे कृष्णगढ तह निति सुकवि निवास ।
भूप बहादर राज है विडद सहै जुवराज ॥६॥

राधा तुलसी हरिचरन हरि कवि चित्त लगाय ।
तहँ कविप्रिया भरन यह टीका करी बनाय ॥६॥

सत्रह सौ छयासठि मही कवि को जन्म बिचार ।
कठिन ग्रथ सूधौ कियो लैहैं सुकवि निहारि ॥८॥

× × ×

समत ठारे से विते पैंतिस अधिक लेपि ।
सपि अठारह सौ जब त्रियौ ग्रथ हरि देपि ॥१३॥

माघ सास तिथि पचमी सुकला कवि को बार ।
हरिकवि कुल सौं प्रीन हो राधा नन्द कुमार ॥१५॥

पुराहित श्री नन्द के मुनि सडिल्ल महान ।
हैं तिनके हम गीत मे मोहन मो जिजमान ॥१८॥

इति श्री हरिचरणदासकृत कविप्रियाभरण टीकाया
चित्रकाव्य व्याख्या सोडसो प्रभाव सपूण ।

(२) बिहारी सतसई की टीका 'हरिप्रकाश टीका' मे

सवत अठारह सौ विते तापर तिय अस चारि ।
जन्माठें पूरो कियो कृष्ण चरन मन धारि ।।

(३) सभाप्रकाश मे–

कवि स्थिति

श्री, बिसभर बस मैं रामतनै हरिनाम
नवादपारे सरवार मे अभिजन वढया ग्राम

वार्ता – पूव पुरस को वास सो अभिजन कहाव कवि की नवीन

दोहा

छपरा सहर जहान मैं है सारन सरकार
कोस दसक उत्तर बसै छपरा ते लोवार
श्री सुकदेव तनै जहा चक्रपानि सुपदान
हरि कवि को मातुल वहै वहै सुविधादान
आधकोस लौवार त ग्राम चैन पुर चारु
परगना गोवा तहा हरि कवि वास विचारु ।।

वर्त्ता – कहा रस कोई नही निरस काव्य कहावें यानि रसवत का य लछन ।

दोहा

वेद ।।४।। इदु ।।१।। गज ।।८।। भू १ गनित सवत्सर कविवार ।
श्रावन शुक्ल त्रयोदसी रच्यो ग्रथ सुविचार ।

अत सभा प्रकाश का रचना काल १८१४ वि० शुक्रवार श्रावण शुक्ल त्रयोदशी ।

(४) वृहत्तरणामरण मे पुष्पिका

अथ कवि की स्थिति—

दोहा

राजत सुबे विहार म है सारन सरकार।
सालग्रामी गुरगरित सरजू लाभ अपार ॥३६॥

सालग्रामी गुरगग्ति मिली गग सौं आय।
अतराल में देस सो हरि मवि वा नरमाय ॥८०॥

परगन्ना गोवा तहां गाव चनपुर नाम।
गगा सौ उत्तर तरफ तह हरिकवि को धाम ॥४१॥

सरजूपारी द्विज सरस वासुदेव श्रीमान।
ताको सुत श्री रामघन ताको सुत हरि जान ॥४२॥

नवापार मे ग्राम है बढया अभिजन तासु।
विस्वसेन कुल भूपवर करत राज रविभास ॥४३॥

मारवार मे कृष्णगढ तिह किय हरिकवि वासु।
कोस जु कर्नाभरन यह कीनों है जु प्रकासु ॥४४॥

श्रुतिभूपन नानाथ की पहिल रचना कीन।
अनेकाथन लिख्यो इहा लखि है सुकवि प्रवीन ॥४५॥

कवित्त—

वृंदावन वस्यो नहि राधे कान्ह रूप रच्यौ तीरथ
फिर्‌यो तो मेरे जान वे फिर्‌यो वह्यौ

भीमा सब त्यागो सौ न कब भाग्यौ नीर मे
सयन के समीर दुख को सह्यो।

भयौ ज्यौं उदासी सही लोकन की हासी वत्ति
राखिकें अकासी कासी मे पर्‌यो रह्यो ॥८६॥

करम की रोकन मे फिरयौ तिहु लोकन मे
भयो वे असोक रह्यो विषै वस काय है।

दयाके चितायौ तुव दास मैं कहायौ छाप
तिलक लगायौ तुम्हे देखन की चाय है।

भूलत हो काहैं चार्गै वेदन की साहै हरि जो
पै गही बाहैं तो निबाहे बनि आय है ॥४७॥

दोहा – वसत कृष्ण के चरण मे विघ्न हरन सुख खानि।
प्रेम भक्ति की दानि हैं तुलसी जानि ॥४८॥

रचना काल – १८३८ सवत ठारह सै विते तापर हैं अठतीस।
कीना कर्नाभरन हरि-हृदे राषि जगदीस ॥४९॥

सवैया

भादो के सित पछ मे अष्टमी वासव (?) कजे (?) महा सुख दाई
उच्च है पच ग्रहै अनुराधा बृहस्पति जोग मे प्रीति लखाइ
केसरी लग्न (?) प्रभात मे भानु-सुता प्रगटी रति कोटि निकाई
ताही ए द्यौस मैं पूरो कियो हरि ग्रथ कवीस को मगलदाई ॥५०॥

(५) मोहनलीला

इसकी पुष्पिका आगे दी जा रही है। इसका रचना काल–१८५३ या १ ८+५+०=१७ घटाकर १८३६ वि० अगहन वदी एकादशी होना है।

(६) कवि वल्लभ—ग्रथ कवि की स्थिति

दोहा

नवापार सुभ देस मे राज वढैया ग्राम।
श्री विश्वभर वस म वासुदेव तप धाम ॥७४॥

ताको सुत श्री रामधन कियौ चनपुर वास।
परगना गोआ तहा चारि वर्न स हुलास ॥७५॥

(४) पृहत्वरणामरण मे पुष्पिका

अथ कवि की स्थिति—

दोहा

राजत सुबे निहार म है सारन सरकार।
सालग्रामी सुरसरित सरजू साभ अपार ॥३६॥

सालग्रामी सुरसरित मिली गग सौं आय।
अतराल में देस सो हरि कवि का मरसाय ॥४०॥

परगन्ना गोवा तहा गाव चनपुर नाम।
गगा सौं उत्तर तरफ तह हरिकवि को धाम ॥४१॥

सरजूपारी द्विज सरस वासुदेव श्रीमान।
ताको सुत श्री रामधन ताको सुत हरि जान ॥४२॥

नवापार मे ग्राम है बढया अभिजन तासु।
विस्वसेन कुल भूपवर करत राज रविभास ॥४३॥

मारवार मे कृष्णगढ तिह् किय हरिकवि वासु।
कोस जु कर्नाभरन यह कीनौं है जु प्रकासु ॥४४॥

श्रुतिभूपन नानाथ की पहिल रचना कीन।
अनेकाथन लिख्यो इहा लखि है सुकवि प्रवीन ॥४५॥

कवित्त—

बदावन बस्यो नहिं राधे काह रूप रच्यौ तीरथ
फिर्यो तो मेरे जान वे फिर्यो वह्यौ

भोमा सब त्यागो सौ न कब भाग्यौ नीर मे
सयन के समीर दुष को सह्यो।

भयौ ज्यौ उदासी सही लोकन की हासी वत्ति
राखिकें अकामी कासी मे पर्यो रह्यो ॥४६॥

करम की रोकन मे फिरयौ तिहु लोकन मे
भयो वे असोक रह्यो विषै वस काय है।

दयाके चितायौ तुव दास मैं कहायौ छाप
तिलक लगायौ तुम्हे देखन की चाय है।

भूलत हो काहैं चारौ वेदन की साहै हरि जो
प गही बाहैं तो निवाह वनि आय है ।।४७।।

दोहा – वसत कृष्ण के चरण मे विघ्न हरन सुख खानि।
प्रेम भक्ति कौ दानि हैं तुलसी जानि ।।४८।।

रचना काल – १८३८ सवत ठारह सै विते तापर हैं अठतीस।
कीनो कर्नाभरन हरि-हृदै राषि जगदीस ।।४९।।

सवैया

भादो के सित पछ मे अष्टमी वालव (?) कज (?) महा सुख दाई
उच्च है पच ग्रहै अनुराधा वृहस्पति जोग मे प्रीति लखाइ
केसरी लग्न (?) प्रभात मे भानु-सुता प्रगटी रति कोटि निकाई
ताही ए द्यौस मैं पूरो कियो हरि ग्रथ कवीस को मगलदाई ।।५०।।

(५) मोहनलीला

इसकी पुष्पिका आगे दी जा रही है। इसका रचना काल-१८५३ या १ ८+५+३=१७ घटाकर १८३६ वि० अगहन बदी एकादशी होता है।

(६) कवि वल्लभ—ग्रथ कवि की स्थिति

दोहा

नवापार सुभ देस मे राज वढया ग्राम।
श्री विश्वभर वस मे वासुदेव तप धाम ।।७४।।

ताको सुत श्री रामधन कियो चनपुर वास।
परगन्ना गोआ तहा चारि वर्न स हुलास ।।७५।।

सालग्रामी सरजु की मिली गग त्यौ धार ।
अतराल मे देस तहा है सारन सरकार ।।७६।।

तनय रामधन सूर कौ हरि कवि किय मरुवास ।
कवि वल्लभ ग्रथ हि रच्यौ कविता दोस प्रकास ।।७७।।

उदाहरन प्राचीन द कीन कह नवीन ।
रच्यौ ग्रथ कौं सुगम करि लषि है सुकवि प्रवीन ।।७८।।

पुरोहित श्री नन्द कौ मुनि साडिल्य महान ।
हम है तिन के गीत मैं मोहन मो जिजमान ।।७६।।

इद्रादिक को देत जौ सपति सौ जजमान ।
तिहिं तज जाचौ और सुर नहिं मोसौ अज्ञान ।।८०।।

सवया

राधिका के दृग सौ सजनी समता नहिं पक्ज के दल की हैं ।
षजन मजुल भासत है न अ गूठी बकी सब कज्जल की है ।
छूटि परी अलक पलक छुप (?) उच्च उरोजनि मे कलि है
कचन क मनु चारु पहार मे धारसी ए जमुना जल की है ।।८१।।

सवत नद ६ हुलासन ३ दिग्गज ८ इदु १ ऊ सौं गगन जु दिपाई
दूसरौ जठ लसी दसमी तिथिहि साव (?) रोच (?) छनिकाई ।
रचनाकाल १८३६ दूसरा जेठ दसमी ।

तीरत जग के औ बुधवार वि कमन की गति लाभ लनाई
श्री तुरसी उपकठ तहा रचना यह पूरी भई सुखदाई ।।८२।।

(७) भाषा दीपक

सवत अठारह सौ जुचारि चालीस के ऊपर ।
भाद्रव (?) हस्र (?) तिथि अष्टमी सु दिन राज बुधवासर ।
उमर उनासी वष की जु किय भाषा दीपक ।
ववक रवढि जाय सुकवि मान सविद्या छ्त ।।
जिन रसिकप्रिया टीकाकरी करि बिहारी टीकादि हरि ।
तिन किया ग्रय तुलसी निकट राधा माहन चित्त धरि ।।६८।।

आदिय दसो 'मोहनलीला' औ 'रामायणसार' 'कविप्रिया की टीका' औ भाषा भूषन की टीका' औ 'सभा प्रकाश' औ 'कवि वल्लभ' भजा ? मैं दोष गुन के निराय।

औ दोष कोस। 'श्रुति भूषन'। औ 'करना-भरन' भागवत प्रकास'। इतने ग्रंथ किए।

इति श्री हरिचरण दास कृतो भाषा दीपकाख्यो म ग्रंथ सम्पूर्णो।"

भाषा दीपक स० १८४४ की रचना है।

इन पुष्पिकाओं के आधार पर कवि की स्थिति का यह रूप बनता है—

जन्म स्थान

आचार्य हरिचरण दास का जन्म स्थान बिहार के मूल में सारन नाम की सरकार है उसमें शालिग्रामी सुरसरिता सरयू का गंगा में संगम होता है। इन दोनों के अंतराल में छपरा जिले के गोधा नाम के परगने में चैनपुर गाँव है। यही चैनपुर कवि का जन्म स्थान है। 'मिश्रबन्धु विनोद'[1] तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य[2] में इन्हें कृष्णगढ़ (किशनगढ़) का रहने वाला बतलाया गया है किन्तु डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इनकी जन्मभूमि बिहार प्रांत का चैनपुर गाँव ही स्वीकार की है।[3] शिवपूजन सहाय जी[4] ने आचार्य का निवास स्थान सारन जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'चिरान' ग्राम स्वीकार किया है। अधिकतर विद्वानों ने बिहार के चैनपुर गाँव को ही आचार्य हरिचरणदास का जन्म स्थान स्वीकार किया है।[5]

वंशावली

आचार्य हरिचरण दास विश्वम्भर के घर में हुए थे। इनके पितामह का नाम वासुदेव त्रिपाठी था जो पहले नवापार देश के बढ़या गाँव में रहते थे

---

१ मिश्रबन्धु-मिश्रबन्धु विनोद भाग १ (खण्ड १, २), पृष्ठ ८०२

२ मेनारिया, मोतीलाल, (डॉ०) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २६३

३ वही राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १६८

४ सहाय शिवपूजन-हिन्दी साहित्य और बिहार (भाग २), पृ० २२२

५ (अ) बराठी, कुसुम-Studies in Sanskrit & Hindi—Vol 5 1970-71

(ब) सत्येन्द्र, (डा०) ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ६००

(स) परिशोध, अ० १०-पृ० ६६

और अभिजन कहलाते थे । इनके पुत्र श्री रामधन चनपुर म आकर बस गय । कवि हरिचरण दास इन्ही रामधन क पुत्र थे । ये मारवाड के कृष्णगढ़ राज्य मे आ बसे । आचाय की वशावली के सम्बन्ध म सभी विद्वानो म मनक्य है ।

जाति

हरिचरण दास जी की जाति के सम्बन्ध मे श्री जगन्नाथदास रत्नाकर और विद्वद्वर आचाय विश्वनाथ प्रसाद को छोडकर सभी एक मत हैं । सभी विद्वान आचाय को सरयूपारी ब्राह्मण और शाडिल्य गोत्र का स्वीकार करते हैं । 'कवि वल्लभ मे 'तनय रामधन सूर' कवि ने लिखा है । इसी आधार पर प जगन्नाथ दास रत्नाकर तथा आचाय मिश्र ने 'सूर' शब्द को 'सूरि' मानकर इन्हे जन बतलाया है किन्तु समस्त विवरण से जो रूप प्रकट होता है, उसस ये ब्राह्मण और वष्णव प्रतीत होते हैं ।

मातुल तथा गुरु

आचाय हरिचरण दास का बचपन अपने मामा के यहाँ व्यतीत हुआ । सारन सरकार मे छपरा शहर है । छपरा से उत्तर मे दस कोस पर लौवार नामक ग्राम है । इसी गाँव म शुकदेव के गुणी पुत्र चक्रपाणि रहते थे । ये चक्रपाणि ही शुकदेव के मातुल (मामा) थे । यही इनके विद्या गुरु भी थे । लौवार ग्राम, चनपुर ग्राम से आधा कोस दूर है ।

बिहारी सतसई की 'हरि प्रकाश टीका मे कवि ने लिखा है —

सेवी जुगल किसोर के प्राननाथ जी नाव ।
सप्तसती तिन सौ पढी वसि सिंगारवट गाव ।२।
जमुना तट सिंगारवट तुलसी विपिन सुदेस ।
सेवत सत महत जहि देषत हरत क्लेस ।

इसमे कवि ने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि वन्दावन मे शृ गारवट नामक स्थान यमुना तट पर है, वहाँ शृ गार वट मे रहकर प्राणनाथ जी से सप्तसती पढी थी । ये प्राणनाथ युगलकिशोर के उपासक थे । अत इनके एक अन्य गुरु ये प्राणनाथ भी थे । डा० कुसुम बराठी[1] हमारे उपयुक्त मत से सहमत नही हैं।

---

१ बराठी कुसुम (डॉ०) आचाय हरिचरण दास व्यक्तित्व एव कृतित्व (अप्रकाशित), शोध प्रबन्ध पृ० १४

आयु

डा० सत्येन्द्र[1] ने 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में आचार्य का जन्म १७६६ विक्रमी तथा मृत्यु सं० १८३५ में मानी है। 'भाषा दीपक' में सं० १८४४ रचनाकाल देकर कवि ने उस समय अपनी आयु उन्यासी (७९) वर्ष की बतायी है। इससे इनका जन्म सं० १७६५ में बैठता है किन्तु 'कवि प्रियाकी टीका' में कवि ने जन्म सं० १७६६ दिया है। मृत्यु सं० १८३५ में किसी प्रकार नहीं मानी जा सकती है क्योंकि सं० १८४४ तक तो वे जीवित थे। जिस प्रकार 'भाषा दीपक' में अपनी वय का उल्लेख किया है उससे यह आभासित होता है कि उनकी दृष्टि में यह उनका अन्तिम ग्रंथ होने वाला था। अतः इनका जन्मकाल सं० १७६५ तथा मृत्यु सं० १८४४ के उपरान्त हुई। डा० कुसुम बराठी जन्म सं० १७६६ स्वीकार करती हैं।

निवास स्थान

मारवाड़ का कृष्णगढ इनका निवास स्थान था। यह कृष्णगढ आज का 'किशनगढ' है। किशनगढ के राजघराने वैष्णव थे। ये राजे महाराजे तथा इनकी रानियाँ सभी काव्य रचना में रुचि रखते थे। अनेक कवियों को इन्होंने आश्रय दिया था जिन्होंने निश्चित भाव से कृष्णगढ में रहकर प्रभूत काव्य रचना की थी। हरिचरण दास ने इसी कृष्णगढ में रहकर अपनी रचनाएँ निर्मित की।

आचार्य शिवपूजन सहाय का मत है कि हरिचरण दास पहले नवापार के 'बन्या गाँव' के श्री विश्वसेन के आश्रित थे। वहाँ से ये कृष्णगढ के महाराज राजसिंह के आश्रय में चले आये।[2] डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित का विचार है कि ये सारन जिले के 'बढिया' के जमींदार विश्वसेन के आश्रय में कुछ काल रहने के उपरान्त वृन्दावन चले गये।[3] आचार्य के ग्रंथ 'सभा प्रकाश' तथा 'रामायण सार' से इनके कृष्णगढ में रहने का प्रमाण मिलता है जो कि इनकी प्रारम्भिक रचनायें हैं। 'सभा प्रकाश' में कवि ने बहादुरसिंह की अत्यधिक प्रशंसा की है इससे स्पष्ट होता है कि प्रथम ग्रंथ की रचना किशनगढ के महाराजा बहादुरसिंह के आश्रय में रह कर की—

> वैरी हिये सालतें वहादुर नरेस वली,
> ऐसी जग माहि तेरी सुजस कहानी है।[4]

---

१ सत्येन्द्र, (डॉ०)—ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ४००
२ सहाय, शिवपूजन—हिन्दी साहित्य और बिहार पृ० १७६
३ दीक्षित आनन्द प्रकाश, (डॉ०) परिशोध (अंक १०) पृ० ६६
४ सभा प्रकाश, १०

वि० स० १८३२ म रचित 'रामायणसार' के अनुसार ये पहले किशनगढ पहुँचे।

कवि सारन सरकार को वास चंनपुर ग्राम।
मारवाड मे कृष्णगढ बस्यौ कहै हरि नाम॥

आचाय हरिचरण दास किशनगढ से वृन्दावन स १७३६ म आगये थे। यह 'कवि वल्लभ' तथा भाषा दीपक से अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार इन्होने कुछ रचनायें—'सभा प्रकाश' तथा 'रामायण सार' बहुत कर्णाभरण कोप प्रतापसिह विरुदावली का सृजन किशनगढ म किया कवि प्रिया टीका और बिहारी सतसई की हरि प्रकाश टीका इन्होन वृन्दावन म लिखी। इस प्रकार आचाय चनपुर, बढयाग्राम किशनगढ तथा वृन्दावन म रहे।

आश्रयदाता

आचाय हरिचरण दास बढया गाँव के जमीदार विश्वसेन के आश्रय मे कुछ समय रहकर किशनगढ (मारवाड) मे चले गय। ये किशनगढ के महाराजा बहादुरसिंह एव विरदसिंह के राज्याश्रय म रहे तथा विरदसिंह के पुत्र कुवर प्रतापसिह के भी यह समकालीन रह। विद्वानो का एक वग किशनगढ के महाराजा राजसिंह (बहादुर सिंह के पिता) तथा नागरीदास (बहादुर सिंह के बडे भाई) को इनका आश्रयदाता मानता है। सभा प्रकाश से ज्ञात होता है कि महाराजा बहादुर सिंह इनके आश्रयदाता थे इन्होने बहादुर सिंह का यशोगान किया है। सभा प्रकाश म एक-दो छदो म कुवर विरदसिंह का यशोगान किया है। 'सभा प्रकाश के अतिरिक्त प्रतापसिंह विरुदावली म कुँवर प्रतापसिंह के शौय वणन के साथ मे विरदसिंह नरेश का भी उल्लख किया है। आचाय ने विरद सिंह के राज्यकाल मे कवि वल्लभ रसिक प्रिया की टीका प्रतापसिंह विरदावली एव भाषा दीपक ग्रन्थो का निमाण किया था। इस प्रकार आचाय हरिचरण दास जमीदार विश्वसेन महाराज बहादुर सिंह एव महाराज विरदसिंह के राज्याश्रय मे काफी समय तक रहे। इसीलिये कुँवर प्रतापसिंह के सम्पक म रहने का अवसर इन्हे प्राप्त हुआ।

भक्ति

आचाय हरिचरण दास भक्त कवि थ। इन्होने तीन भक्ति परक रामायणसार मोहनलीला तथा भागवत प्रकाश ग्रन्थो की रचना की। ये राम कृष्ण क परम भक्त थ। इस प्रकार की भक्ति भावना को देखकर इनको महान

भक्तों की श्रेणी में स्थान दिया जा सकता है। 'मोहन लीला' तथा 'भागवत प्रकाश' में इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है जिसमें कहीं भी शृंगारिक चित्रण को स्थान नहीं मिल सका है। 'रामायण सार' में ये राम के भक्त के रूप में पाठक के समक्ष आते हैं। ये राधा कृष्ण के युगल स्वरूप के उपासक थे। इनका विश्वास है कि राधा नाम के अभाव में कृष्ण नाम से अधूरे फल की प्राप्ति होती है—

बिन राधा फल आधा कृष्ण नाम कौ।

कृष्ण की उपासना नर रूप में न करके इष्ट रूप में की है। कृष्ण ने जन रक्षा के लिये भूलोक में जन्म लिया है। इनमें सौन्दर्य, रक्षणशीलता, भक्तवत्सलता, कृपालुता आदि कई गुण विद्यमान हैं। बाल लीला के वर्णन में कृष्ण की सुषमा का वर्णन प्रस्तुत है—

मातु लखें धम दातनिकी रुचि सावरी सूरति मोद बढावति।
भाई भुजा कटि छीन लसै हरि ककन किंकनी की छवि छावति।
काह्ना के पावन की सुषमा नख पाति लखें मन में यह भावति।
बधु सौ सधि कियो मनु चाहति चदकला अरविन्द मनावति॥

हरिचरणदास ने 'रामायण सार' ग्रन्थ में राम जन्म, बाल लीला, ताडका वध अहिल्या उद्धार चापभग राम आदि भ्राताओं का विवाह राम वनगमन, सीता हरण राम वियोग तथा अनेक राक्षसों के साथ युद्ध करने का वर्णन किया है जिसमें राम का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। आचार्य दोनों हाथ जोड़कर यह कामना करते हैं कि अवधपुरी का वास मिले तथा राम के पवित्र शरीर से स्पर्श की हुई रज को अपने अंग से लगा लूँ और सरयू नदी के किनारे बस जाऊँ—

वकमो मुहि आवपुरी मैं फिरो, रघुनाथ के गुन माहि रमौं।
जग में अनुराग तजौ सब सौं हरि लाग विरागन माहि लसौं।
रघुवीर के पावन पावन की परसी रज लै निज अंग पसौं।
कर जोर दाऊ गरजू ह्वै कहो सरजू तुव नीर के तीर बसौं॥

हरिचरणदास को वृन्दावन से अधिक प्रेम था। इसी को निवास स्थल बनाया। मोहन लीला में अनेक स्थानों पर वृन्दावन के सौन्दर्य का चित्रण

किया वृंदावन की सुषमा का वर्णन करते हुए उन्हें इंद्र का महल भी कृष्ण के उपवन के आगे फीका लगने लगता है—

बास बसंत की मंजुल कुंज में गुंजत भौंर हरे सब को मन।
सुर सुता तट धीर समीर रही सुषमा गहि मानौं लता तन।
हेरत मोहन का भावी धरवी सविस है कुबेर को धन।
इंद को नंदन भेद लगे निरखे चप सौ नंद नंदन को बन॥

वृंदावन में यमुना के निकट जहाँ कृष्ण राधा नित्य क्रीडा करते थे वहाँ इनका निवास स्थान रहा—

तुलसी को सेवन मिलौं, वृन्दावन को वास।
जमुना के तट मे रहौ ह्वं राधा हरि दास॥

'तुलसी' के सम्बन्ध में इनके विविध उल्लेख हमारा विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। जहाँ कहीं राधा कृष्ण के प्रति भक्तिपरक छंदों की रचना की है वहाँ तुलसी के महत्व का प्रतिपादन अनेक स्थानों पर किया है। यथा—

वृहत्कर्णाभरण

बसत कृष्ण के चरण मे विघ्न हरन सुख खानि।
प्रेम भक्ति की दानि हैं तुलसी जानि।

रामायण सार

तुलसी को सेवन मिलौ मिलौ औध को वास।
भक्ति सियावर की मिलौ यह मो मन की आस।

भाषाभूषण टीका

तुलसी सोभती चरण मैं गल तुलसी दल माल।
विहरत राधा संग मैं जमुना तट नंदलाल।

बिहारी सतसई टीका

तुलसी दल माल तमाल सो स्याम अनग तें सुन्दर रुप सुहाही ।
श्रुत कुडल के मने की झलकै मुप मडल पै वरनी नही जाही ।

श्रुति भूषण

पावन में मनमोहन के जग पावन राजै तिहारो विहार है ।
लोक अनेक के तारन कौ करुना कर भूमौ लियौ अवतार है ।
थोरौ भी सेवत जो तुमकौं हरि ताकौ क्वै नहिं होत विगार है ।
विघ्न नसै तुलसी तुव नाम सौं जैसे अगार सौं तूल तुमार है ।

कवि वल्लभ

मोहन चरण सरोज मे तुलसी कौ है वास ।
ताहि सुमिरि हरिभक्ति सब कनत विघ्न को नास ।।१।।

तथा

ज्यौं चाहौ भव भय मिटैं भजो सदा गोविन्द ।
हरि हू तारन तुलसि दल पाउ करो आनन्द ।।६७।।

भव जल पार करो तुलसी यह तुव सहज सुभाव ।
देख्यौ जग मे नव तिरै बेठि काठ की नाव ।।६८।।

ग्रंथ उल्लेख

'भाषा दीपक' में कवि ने स्वय अपनी निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है—

(१) रसिक प्रिया की टीका
(२) बिहारी सतसई की टीका (रचना काल-१८३४)
(३) मोहन लीला (रचना काल-१८३३ या १८१८)
(४) रामायन सार
(५) कवि प्रिया की टीका (रचना काल-१८३५)
(६) भाषा भूषन की टीका

मानव का एक चित्र उपस्थित करना है। भाषा सहज सौन्दय एव लालित्य को लिये हुये है जिसम सयुक्त वण कम मात्रा म मिलते हैं।

(३) रामायण सार

'रामायण सार कवि की तृतीय रचना है। जगदीश के यशगान क लिये 'रामायण सार की रचना की थी। ग्र थ म रचना काल निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है —

सवत अठारह सौ वित तापर बरष बतीस।
जेठ मास सुदि पचमी बरन्यौ जस जगदीश।।

अर्थात ज्येष्ठ शुक्ल पचमी स० १८३२ को इस ग्र थ का प्रणयन हुआ। इस ग्रन्थ म 'वाल्मीकि रामायण का सार निहित है। ग्रन्थ क आरम्भ मे राम की स्तुति ६ छन्दो म की गयी है। राम के जन्मोत्सव से कथा का प्रारम्भ किया गया है। इसम बालकाण्ड अयोध्या काण्ड किष्किन्धा काण्ड सुन्दर काड लका काण्ड तथा उत्तर काड की कथाओ का वणन किया है। इसका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—

बाल ओधवन काड कहि। कह्यो किंकिधा वास।
सुन्दर लका काड कहि, उत्तर कह्यो प्रकास।।

रामायण सार मे कथा काण्डो मे विभक्त नही है किन्तु कथा को प्रारम्भ करने से पूव ही उस प्रसग की चर्चा करदी है तथा यत्र तत्र कथा को गद्य मे लिखकर उसका विस्तार कर दिया है।

(४) 'बिहारी सतसई टीका (हरि प्रकाश)

इस ग्रन्थ का प्रणयन हरिचरणदास ने भाद्रपद की कृष्ण जन्माष्टमी को स० १८३४ मे किया। कवि ने लिखा है वार्ता पुरषोतम दासजि को बाध्यो क्रम है।। ताके अनुसार टीका । अर्थात बिहारी के दोहो को सुनिश्चित योजनाबद्ध रूप पुरुषोत्तमदास जी न प्रस्तुत किया। इसी क्रमबद्ध रूप से आचाय हरिचरण दास ने दोहो की याख्या की। हरिप्रकाश टीका म ७१४ दोहो की विस्तृत व्याख्या सरल एव साहित्यिक प्रसगो के साथ टीका को गद्य म प्रस्तुत किया गया है। ग्र थ के आरभ मे राधा-कृष्ण की वन्दना पाच दोहा म करने के पश्चात ५ दोहो म कवि की स्थिति का वणन किया है। ७१४ दोहो की व्याख्या कर कवि ने अपन परिचय के साथ अपने गुरु का उल्लेख किया है जिनसे बिहारी सतसई पढी थी। इन

दोहो की विवेचना काव्य शास्त्रीय पक्ष के ग्राधार पर ग्रनेक ग्रथों को समभाते हुए की है। इस टीका मे ग्रलकार के भेद उपभेदों का निरूपण ग्रनवर चद्रिका के ग्रनुसार प्रस्तुत किया है—

लिखे इहा भूपन वहुत ग्रनवर के ग्रनुसार ।।
कहु ग्रौरे कहुँ ग्रौर हु निकरगे लकार ।।

(५) भाषा भूष टीका (ग्रलकार चद्रिका)'

भाषा भूषण महाराजा जसवतसिंह द्वारा रचित ग्रलकारिक प्रसिद्ध एव उपयोगी ग्रन्थ है। भाषा भूषण जयदेव कृत 'चद्र लोक' से प्रभावित है किन्तु ग्राचाय ने इसमे ग्रन्य सस्कृत ग्रन्थो से सहायता ली है। 'भाषा भूषण की ग्रनेक टीकायें प्रस्तुत की गयी हैं जिनम हरि कवि कृत 'ग्रलकार चद्रिका प्रसिद्ध है। ग्रन्थ के ग्रन्त मे भाषा भूषण टीका का रचना काल बताते हुए कवि ने लिखा है—

सवत् ग्रठारह सौ विल तापर चौतिस जान ।
टीका कीनी पूस दिन गुरु दशमी ग्रवदान ।।

ग्रर्थात स १८३४ के पौष माह की दशमी गुरुवार को यह टीका की गयी। ग्रन्थ के ग्रारम्भ मे राम एव गणेश को स्मरण करके ४ पद्यों मे राधा कृष्ण के भक्ति परक पद्य गाये हैं तत्पश्चात् कवि ने 'चद्रलोक' एव ग्रन्थ सस्कृत ग्रन्थो का ग्राधार मानकर भाषा भूषण की टीका प्रारम्भ की है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वर्णित रस प्रकरण की टीका नही की है क्यो कि यह रस प्रकरण परम्परागत है। ग्रत 'भाषा भूषण टीका म ग्रलकारो का ही विवेचन है। टीका गद्यात्मक है एव मूल पाठ तथा बिहारी, मतिराम के दोहे पद्य म वर्णित हैं। इस ग्रन्थ मे कुल २०५ दोहा म ग्रलकारो की विवेचना की है। ग्रन्त के ७ दोहा मे कवि परिचय एव ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है।

(६) कवि प्रिया टीका (कवि प्रियाभरण)

केशव ने कवि प्रिया की रचना कवि शिक्षा के लिये की थी। कवि प्रिया को हिन्दी का प्रथम काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ माना गया है ग्रौर इसकी ग्रनेक कवियों ने टीकायें की इनम ग्राचाय हरिचरण दास की टीका प्रसिद्ध है। इसकी रचना स० १८३५ म माघ मास की शुक्ल पचमी को हरि कवि ने राधा नद कुमार से प्रीति रख कर की। ग्रन्थ के ग्रारम्भ म गणेश को स्मरण कर गुरु के चरण कमलो म प्रणाम किया है फिर राधा कृष्ण की विनती ७ पद्यो मे की है। कवि प्रिया १६ प्रभावो—राजवश वर्णन, कवि वश वर्णन कवित्त

दूसरा बगान, कवि अवस्था बगान दोय पर्ण वर्णानिकार बगान भू श्री बगान राज्य श्री बगान के पश्चात् ९, १० ११ १२ १३, १४ प्रभावो म पलकार विवेचन को प्रस्तुत किया है। नखसिख बगान एव चित्र काव्य बगान १८ और १६ प्रभाव म हुआ है। अन्त म १६ पद्यो म कवि परिचय तथा कृष्ण राधा की स्तुति की गई है। आचार्य हरिचरणदास ने नाट्य शास्त्र कोशकार अमरकोष मयह कोश आदि ग्रथो स कवि प्रिया की व्याख्या करने म सहायता ली है।

(७) श्रुति भूषण

हरिचरणदास कृत श्रुति भूषण की जो प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है। इसम दो काड एव ८६ छन्द हैं प्रथम काण्ड म ३६ एव द्वितीय काण्ड म पान्त स्वर तक ५३ छन्द वर्णित हैं। कोष का सृजन सवया दोहा छप्पय एव कवित्त म हुआ है। श्रुतिभूषण पर अनेकार्थ सग्रह का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है किन्तु इसम उससे अधिक शब्दो का सकलन है। प्रारम्भ म ६ पद्यो म कृष्ण राधा की वन्दना करने क पश्चात् दो दोहो म कोष रचना का कारण स्पष्ट किया है। प्रथम काण्ड म अकार स सकार तक के वर्णों क पर्यायवाची नाम का उल्लेख है। अकार के पर्याय निम्न प्रकार प्रस्तुत किय गय हैं—

हरि १ विधि २ शभु ३ कमठ ४ उमा ५ इत माहि अकार।
अतराल ६ पुन जनन ७ रन ८ जा निपध ६ सुविचार ॥६॥

द्वितीय काण्ड म क वग स म वग तक दो स्वर वाल शब्दो क पर्याय कात खात आदि के अनुक्रम से लिय गये हैं। कात स्वर का द्विअक्षरीय पर्याय इस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं—

अर्क ० आक १ रवि २ सक्र ३ फटिक ४ तावो ५ पुन कहियत।
अक ० कल्मष १ पुपर अक चिन्ह १ अपराध २ भूषण ३ सत ॥

(८) वृहत् कर्णाभरण कोष

इस ग्रन्थ मे मूल श्लोको की सख्या ३८३ है जो दोहा सवया कवित्त छप्पय आदि छदो म शब्दो को पद्य मय रूप म प्रस्तुत किया गया है इसके अतिरिक्त गद्य म भी यत्र तत्र टिप्पणियाँ दी गयी है। यह कोष 'अमर कोष से प्रभावित होते हुय भी इसम मेदिनी एव हेमकोश स सहायता ली गया है। अमरकोष क आधार पर यह तीन काण्डो म विभाजित है प्रथम काण्ड दस वर्गों मे क्रमश स्वग वग म ४६ व्योम वग म २ दिग वग म २२ काल वग

मे १७, धी वर्ग म ५ शब्दादि वर्ग मे १०, नाट्यवर्ग मे १८, पाताल वर्ग म ७, नक वर्ग म एव एव वारि वर्ग म १३ श्लोक प्राप्त हैं।

द्वितीय काण्ड के भूमि वर्ग मे ६ पुर वर्ग म १०, शैल वर्ग म ५, वनौषधि मे १३ सिंहादि वर्ग म १४ मनुष्यादि वर्ग मे २६, ब्रह्मवर्ग म ७, क्षत्रिय वर्ग मे ३६, वश्य वर्ग मे २० एव शूद्र वर्ग म २० श्लोक हैं।

तृतीय काण्ड के विशेष्य निघ्न वर्ग में २१, सकीर्ण वर्ग म ४ नानार्थ वर्ग म ४ अव्यय वर्ग म ८ श्लोक हैं तथा वृषभानु तथा नन्द की वशावली देने के उपरान्त राग एव ताल के भेद ३१ छन्दो मे दिये गये हैं अन्त मे कृष्ण राधा की वन्दना करने के पश्चात कवि परिचय एव रचनाकाल दिया है। इस कोष म एक एक शब्द के ४३ ६४ १०७ सख्या तक पर्याय दिये गये हैं।

हरिचरणदास ने अनुपयुक्त शब्दो को त्याग ने के साथ ही साथ अन्य उपयोगी शब्दो का सकलन अन्य ग्रन्थो एव कोषों से किया है। कवि ने पर्याय शब्दो को पद्यमय रूप देने के लिये इन्हे घटाया बढाया भी है, इसके लिये कवि ने लिखा है—

इहा सुवात बहुत समायैव के लिये अनथक भी कहेंगे ॥

सम्बन्ध शब्दो का सक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ—अरु के स्थान पर—रु ।

वर्णों की व्यवस्था इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है—प वर्ग म से खकार का ट वर्ग मे से णकार का, तालव्य के शकार का सयोगी शब्द के क्षकार का कोष मे से लोप कर दिया गया है—

क वर्गीय खकार इहा न टवर्गीय णकार।
नहि तालव्य शकार है सयोगी न क्षकार ॥

किन्तु इन वर्णों के स्थान पर अन्य वर्णों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—ख=ष ण=न, श=स, क्ष=छ। ष वर्ण का प्रयोग अनेक वर्णों के स्थान पर किया गया है।

आचार्य हरिचरणदास का एक 'लघु कर्णाभरण कोष' और उपलब्ध है। सम्भव है वृहत कर्णाभरण को व्यवहारिक तथा उपयोगी बनाने के लिये इसका लघु रूप तयार किया हो।

इस कोष मे २८२ छन्द हैं जो दोहा कवित्त, सवैया आदि छन्दों में निर्मित हैं। प्रारम्भ म राधा-कृष्ण की स्तुति की गई है। इसके पश्चात् कोष

को तीन काण्डो में विभाजित किया हैं जो वहत कर्णाभरण के अनुरूप हैं किन्तु प्रथम काण्ड म नक वग एव तृतीय काण्ड म वषभानु एव नद की वंशावली दा गई है—इन अशा का लघु सस्करण मे वर्णन नही किया है। इसम वहुत कोष की भाति टिप्पणियाँ नही दी गयी हैं तथा शब्दा का सकलन कम है।

(६) कवि वल्लभ

आचाय हरिचरणदास ने 'कवि वल्लभ' की रचना काव्य दोषा की शिक्षा के लिये की थी—

कवि वल्लभ ग्र थ हि रच्यौ कविता दोष प्रकास।

ग्रथ के प्रारम्भ में गणेश स्मरण करने के पश्चात राधा कृष्ण की स्तुति की है। फिर पाँच दोष—पद दोष पदाश दोष वाक्य दोष अथ दोष एव रस दोष का वर्णन किया है। इसमे ७ परिच्छेद है और ५०० दोहे कवित्त सवया छप्पय आदि छन्द हैं। इसम गद्य का प्रयोग किया गया है। पहले दोष का लक्षण दिया है फिर स्वरचित ग्रन्थो से तथा बिहारी सतसई रसिक प्रिया कवि प्रिया आदि ग्रन्थो के उदाहारण दिय हैं उनम प्राप्त का य दोषो को स्पष्ट किया है साथ ही वार्तायें दी हैं जिससे अथ स्पष्ट हो जाय। उदाहरणाथ–गतसस्कृति दोष निम्न प्रकार बताया है—

सब्द सुद्ध नहिं होत है नहिं ह्वै अथ प्रतीत।
गत सस्कृति ताका कहै दोष तीज यह रीत।

उदाहरण दोहा—

किन ध्यालीन म लाल तुम लगे मानत्यौ साच फूर।
ग्वाल रच जन माल सब गए नच की दूर।।

सुप म फूर नाय साच को कहै हैं। नचकी का अथ उत्तम गईया। टीका।। गइ चाहिए नित्य दोष है। गुण नही होत है। नित्य दोष कवि को वाछित अथ नहीं समुभाव हैं। नित्य दोष का लच्छन आग कहैंगे। गए सब पुरष बोधक है स्त्री का बोधक नहीं।।

आचार्य को ब्रजभाषा के अतिरिक्त फारसी सस्कृत तुर्की गौड दश की भाषा मारवाडी आदि भाषाओं का ज्ञान था। अपन तुर्की तथा फारसी

के लिखे ग्रन्थों की ओर संकेत करते हुये लिखा है—ग्रोरि तुरकी हमारो कियो तुरकी प्रकास प्रसिद्ध हैं हमारो किया कवि चातुरी नाम पारसी देख लेऊगें। ये ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

(१०) रसिक प्रिया की टीका (रसिक ललतिका)

केशव ने 'रसिक प्रिया' म नायक-नायिका भेद एव रस भेदो का वर्णन किया है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से केशव की रचनाओं म यह सवश्रेष्ठ कृति है। 'रसिक ललतिका' से पूव सरदार कवि, सूरति मिश्र आदि न टीकायें लिखी हैं। 'रसिक ललतिका' विद्वानो के समक्ष नहीं आ पाई है। अत सरदार कवि की सुन विलासिका को 'रसिक प्रिया' की सब श्रेष्ठ टीका मानते हैं।

आचार्य हरिचरणदास ने इसका रचना काल नहीं दिया है किन्तु इसमे 'कवि वल्लभ' तथा 'कर्णाभरण' के पद्य सम्मिलित हैं इसलिये इसे स० १८३६ के बाद की रचना मानना पडेगा।

रसिक ललतिका म १६१ श्लोको की व्याख्या है। प्रथम ५ छन्दो मे कृष्ण राधा की स्तुति करने के पश्चात् 'रसिक प्रिया' के प्रभावो का विषय विवेचन किया है। प्रथम प्रभाव मे नव रस म शृगार का नायकत्व, शृगार के भेद, सयोग वियोग द्वितीय प्रभाव मे नायक भेद वर्णन तृतीय प्रभाव म नायक-नायिकाओं की विभिन्न चेष्टायें एव उनके विभिन्न मिलन स्थान षष्ठ प्रभाव म नायक-नायिका हाव भाव वर्णन सप्तम प्रभाव मे अष्ट नायिका, सयोग शृगार वर्णन अष्ट प्रभाव मे विप्रलम्भ एव पूर्वानुराग का विस्तृत विवेचन नवम मे मान के भेद दसवें मे मान मोचन वर्णन ग्यारहवें मे विप्रलम्भ शृगार करुण प्रवास वर्णन बारहवें म सखी वर्णन तेरहवें म सखी कर्म, चौदहवे म नवरस वर्णन पन्द्रहवें म वृत्ति वर्णन तथा अंतिम षोडश प्रभाव म अनरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

कवि न रसिक प्रिया की व्याख्या ही नही की है किन्तु केशव के छन्दो म प्राप्त अशुद्धियो का उल्लेख भी किया है। शब्दो को सरल एव स्पष्ट करने के लिये कर्णाभरण एव श्रुति भूषण से उदाहरण प्रस्तुत किये है। आचार्य न नाट्य शास्त्र साहित्य दर्पण अमर कोष अनेकार्थ सग्रह कोष आदि ग्रन्थो के अध्ययन के पश्चात रसिक प्रिया की टीका की है। साहित्यिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण टीका है।

(११) प्रतापसिंह विरुदावली

इस ग्रन्थ मे किशनगढ के महाराजा बिडदसिंह के पुत्र प्रतापसिंह का यश वर्णन दानशीलता एव शौर्य प्रदर्शन प्रशस्तिगान प्रस्तुत किये गये हैं।

इसकी रचना इनके युवराज घोषित होने से पूर्व एवं पश्चात लिखी गयी होगी क्योंकि कवि ने इन्हें विरदनद कुँवर प्रतापसिंह आदि नामों से सम्बोधित किया है तथा १७ वें पद में लिखा है 'लहि युवराज कुँवर प्रतापसिंह पुहमी मे उधारो पाय पुन्य के रपाय हैं।

कवि ने कुल ४७ कवित्त सवैयों में ग्रन्थ की रचना की है। प्रारम्भ के १६ पदों में प्रतापसिंह का तथा उनकी तलवार के तेज का वर्णन है फिर ६ पद्यों में शेर के शिकार का वर्णन तत्पश्चात दो कवित्त में प्रसाद' का सौंदर्य वर्णन करने के पश्चात नायिका को सखी से शिक्षा दिलवायी गयी है। प्रतापसिंह ने पुरवासियों एवं रानी से फाग खेला है अंतिम १४ छन्दों में जाजपूर राज्य से हुये युद्ध का आतंककारी वर्णन प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्रतापसिंह विजयी हुए थे।

प्रस्तुत ग्रंथ वीर रस से परिपूर्ण है। प्रतापसिंह एक वीर योद्धा ही नहीं अपितु दान वीर भी हैं। इसमें वीभत्स एवं भयानक रस का समावेश भी हुआ है। वीर रस से युक्त भयानक रस का एक कवित्त प्रस्तुत है—

किल्ला एक हल्ला करि लेत तू प्रताप सिंघ।
आय रनभूमि कौन भिरै तरवार सौ।।

सुनै तेरौ नाम रिपु कापै आठौं जाम।
देत नापि धनुवान मान जानत प्रहार सौ।।

कुचन के भार पाय धर न सभार होत।
सारिन के टूट लगि झारिन के झार सौ।।

अरिन की रामा अकुलानि सो अमामा भजी।
जात है त्रिजामा मैं दमामा की धुकार सौं।।

कवि ने इस ग्रन्थ में ट वर्गीय सघन कटु वर्णों का प्रयोग अधिक किया है। चित्रमयी शब्दावली एवं सरस प्रवाहमयी शैली, उपयुक्त भाषा सौन्दर्य एवं लालित्य को लिए हुए हैं।

आचार्य हरिचरणदास की अन्य कृतियां में यह ग्रन्थ मिलता है किन्तु इसमें रचनाकाल नहीं दिया हुआ है। इसमें जहाजपुर के युद्ध का वर्णन है जो सं० १८३८ की घटना है। 'भाषा दीपक' के अन्तिम दोहे में इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं है किन्तु भाषा दीपक' की रचना सं० १८६४ भाद्रपद की जन्माष्टमी को हुई। इस प्रकार प्रतापसिंह विरुदावली उसके पूर्व की रचना है।

(१२) भाषा दीपक

यह ग्रन्थ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है इसम काव्य शास्त्र के विविध अगों का सक्षिप्त निरूपण किया गया है। इसमे ६८ छद हैं। तथा ग्रथ स्पष्ट करने को भाषा का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया गया है।

• ग्रन्थ के आरम्भ म कवि न अपन आराध्य देव कृष्ण राधा की वन्दना की है फिर नायिका हाव भाव हेला आदि के भेदो उपभेदो का वणन ४० छदों म किया है ५ छदो म नायक भेद बतलाय हैं, १५ कवित्त म भाव, विभाव, सचारी स्थायी, सात्विक भाव बतलाय हैं साथ ही किस प्रकार रस निष्पत्ति होती है यह भी वर्णित किया गया है। शब्द वत्तिया अभिधा, लक्षणा एव व्यजना को बतलात हुये इनकी व्याख्या २ छन्दो मे प्रस्तुत की है। ४ पद्यो म कृष्ण राधा की स्तुति की तथा अतिम छप्पय मे अपना परिचय रचनाकाल, *ग्रन्थ प्रयोजन तथा पूव लिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है।*

'भाषा दीपक' शिक्षा शास्त्र का ग्रन्थ है इसकी पुष्टि पुस्तक के लिपिकार मगनीराम की निम्नलिखित पुष्पिका से होती है—

'इति श्री हरिचरणदास कृता भाषा दीपकाख्योय ग्रथ सपूर्ण ।। सवत १८८६ का ज्येष्ठ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ नवम्या बुधवासरे मगनीरामेणोलेखि कृष्णगढ़ मध्ये चिरजीव छगनीराम पठनाथ ।।

भाषा दीपक ग्रथ को पढै सुनै मन लाय।
वै ह्वै सुकविसमाज मे कविता नित पुन दाय।

श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु। लेपक पाठकयो शुभभूयात ।।

भाषा दीपक' म ग्रथ को समझान के लिय गद्य मे वार्तायें भी प्रस्तुत की हैं। उदाहरणाथ—पूरन शृगार का एक सवया —

हेरि हस मुष फेरि लियो चपला चमक नभ घेर रह्यो घन।
अग मे सारी सुरग लसैं वनी वानिक सौं अगिया नव जोवन ।।
केलिथली मैं अकेली मिली अनुराग भरी मिले दपति के मन।
अक मैं वा लग ही नदलाल सुरोम उ० सपि सोभमुपी तन ।।

हसी अनुभाव आनन फेरिबो सौं लाज सचारी। मेघ उद्दीपन विभाव अकेली यात निजन समै जोग सिंगार सारी चोमासा मैं सोभे हैं। रोमाच सात्विक मन मिल सौं प्रीति स्थाई। आलम्बन विभाव नायिका नायक। असे वीर आदि मैं राम रावन आदि जानिए ।।'

भाषा दीपक पर साहित्य दर्पण का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। हरिचरणदास ने काव्य लक्षण इस ग्रन्थ में दिये हैं और भाषा दीपक की रचना की है क्योंकि इनका लक्ष्य तो तत्कालीन काव्य को पूर्ण प्रदत्त संस्कृत काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप ढालना था न कि नवीन सिद्धान्तों की स्थापना करना।

(१३) मोहन लीला

हरिचरण दास की कृतियों की अब तक जो चर्चा हुई है, उसमें प्राय यह कहा गया है कि मोहनलीला ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। हमारे संग्रह में मोहनलीला ग्रन्थ है। उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

ग्रन्थ—मोहन लीला ग्रन्थ।

रचनाकार—श्री हरिचरण दास।

रचनाकाल—राम हुतासन गज ससी सवत माहि घटाय।
सेष रहै सो ग्रन्थ को गन वत्सर ठहराय।

लिपिकाल—सवत् १८५६ श्रा० वदी १० शनिवार।

विवरण पोथी—यह पोथी ६ × १०" चौड़ी लम्बी है और चारों ओर १½" का हाशिया छूटा हुआ है। एक हाथ की मोटी कलम की अति सुन्दर शुद्ध लिखावट है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में १३ से १६ अक्षर है। यह पूरा ग्रन्थ ५४ फोलियो में समाप्त होता है। किसी समय यह पोथी सजिल्द होगी। इस समय जिल्द नहीं है और सिलाई भी नहीं है। रचना पूर्ण है। रचना चिकने मोटे कागज पर लिखी है।

विषय विवरण—यह ग्रन्थ श्री हरिचरण दास द्वारा रचा गया है। कवि ने अपने इस ग्रन्थ में भागवत दशम् स्कन्ध की लीलाओं को भाषा में प्रकट किया है अपनी भक्ति भावना तथा काव्य कल्पना द्वारा श्री कृष्ण की बाल लीलाओं को एक आकर्षण रूप दे दिया है। सम्यक ग्रन्थ के रूप में रचना प्रारम्भ होती है। हरिचरण की ग्रन्थारम्भ में वदना करता है तदनन्तर बाल कृष्ण मुरलीधारी समुद्र की छवि का वर्णन करता है, इसके बाद कालिंदि नन्दिनी की स्तुति है फिर वृन्दावन वर्णन और इसके बाद शान्त रस का सवैया दिया है जिसमें कृष्ण प्रेमरहित जीवन को धिक्कारा है। इसके बाद कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन है। ७ वें छन्द के बाद कृष्ण जन्मोत्सव के छन्द चलते हैं जो छन्द संख्या १२ पर समाप्त होते हैं। इसके बाद निम्नलिखित प्रसंगों पर रचना में कृष्ण लीला प्रकट की जाती है—'पूतना का प्रसंग ४

सकटा सुर वध १ तृनावर्ई वध १ जसोदा को सम्पूर्ण विश्व मुख में दिखायो १, भदवा सुद अष्टमी प्रात समै थी राधिका जी को जन्मोत्सव ४, जसोदा एकादसी जल पूजन १, नामकरण १।

बाल लीला—३ दिठोना बनने १५, उराहनौ, बतीसा, मृतिका भक्षन, दामोदर लीला, ब्रजदेवी सब थी कृष्ण को नचाव, वृन्दावनागमन, वृन्दावन वर्णन, वत्सासुर वध, बकासुर वध भादौ वदी द्वादशी सौं बछरा चराय वे लगे छाक लीला, अघासुर वध, वत्स हरन, ब्रह्म स्तुति, गौ चारण लीला, कार्तिक सुदी अष्टमी को नन्द जी श्री कृष्ण को गाय चरायवे को पठाय धेनुक वध, कालीय लीला दावाग्नि पान। छन्द संख्या ६० तक ऊपर लिखे क्रम से कृष्ण लीला का वर्णन किया है फिर लीला में आगे ऋतु वर्णन चलता है—वसंत वर्णन ग्रीष्म वर्णन, वरषा वर्णन, सरद ऋतु वर्णन, सिसिर ऋतु वर्णन, वसंत पंचमी होरी ऋतु वर्णन में ही कृष्ण लीला चलती है। यहाँ भागवत की कथा से अन्तर है, जिसको कवि ने स्वयं कहा है। प्रलंब वध बेनु गीत, चीर हरन, द्विजपत्नी प्रसंग गोवर्धन धारण नंद जी को वरुण के दूत ले गये, गोपिन का मोरछान दिखाये रास लीला, तुलसी जी सौं पूछे हैं जल केलि, सुदर्शन जक्ष को प्रसंग, सखचूड़ को वध जुगल गीत अरिष्टासुर वध केसी वध योगासुर वध। अक्रूर आगमन मल्लजुद्ध कंस वध। यहाँ 'इति लिखा है अर्थात कंस का वध तक लीला चलती है। इसके बाद कृष्ण स्मृति सम्बन्धित नन्द के विचार हैं तथा कृष्ण लीला का व्यापक माहात्म्य प्रकट किया गया है। कवि ने विरह की विशेषता बताई है। अंतिम छंद में कवि ने राम रघुराई की स्तुति की है और अन्त में याचना के पद हैं, जिसमें कृष्ण भक्ति चाही गई है तथा मुक्ति का निरादर किया गया है। अन्त में, कुल एवं जन्मभूमि का परिचय है।

कवि ने ऊपर लिखे हुए प्रसंगों से युक्त कृष्ण लीला का विस्तृत वर्णन किया है। कथा भागवत दशम स्कन्ध के अनुसार ही है कहीं कुछ भेद भी क्रम में कर दिया है। जसे—ऋतु वर्णन के बाद प्रलंब वध का वर्णन, भागवत में प्रलंब वध पहले है कवि ने इसका उल्लेख कर दिया है।

हरिचरणदास जी ने दोहा, सोरठा सवैया, कवित्त मनहरण पद्धरी आदि में रचना की है। कुछ एक स्थानों पर प्रसंग समझाने के लिये *गद्य वार्ता* भी दी है। भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। *बाल वर्णन* अति मनोहर तथा स्वाभाविक बन पड़ा है। भाव भाषा की दृष्टि से यह रचना अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भाषा सरल साहित्यिक है। कल्पना शक्ति के कारण सुन्दर चित्र

लिखे हैं। रूपक उत्प्रेक्षा अनुप्रास आदि की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। ग्रंथ में कवि । अपने दूसरे ग्रंथों के ऐसे पद्य भी लिये हैं जो प्रसंग के अनुकूल हैं। उनका उसने उल्लेख किया है। उसने भागवत प्रकाश, सभा प्रकाश और रामायण सार से पद्य लिये हैं भागवत प्रकाश से ७ सभा प्रकाश और रामायण सार से एक। इनसे कवि के इन तीन ग्रन्थों की ओर भी ध्यान जाता है। कवि ने सम्प्रदाय के अनुसार यमुना स्तुति की है और साथ ही वृंदावन का वर्णन भी किया है। ये बातें कवि के सम्प्रदाय की ओर संकेत करती हैं। सम्पूर्ण रचना १८६ छन्दों में है।

उदाहरण

प्रारम्भ

दोहा

तीरथ सब जिन मैंहि वसत व भव सागर की नाव।
सो तुलसी हरि पगु वस। वसौ सु मो हिय पाव॥

सवैया

माल गल तुलसी दल की
नद लाल लिए मुरली विहरैं वन।
प्रान पिया के हिया कौं हर हसि
होति पुसी ललितादि सपीगन॥
देपत ही दृग लागि रहैं
अनुराग गहैं तजि काज सब मन।
वान कटाछ कमान सी भौंह
अगन के चारु निषग विलोचन॥

जमुना स्तुति का आधा कवित्त

जाकी धार होति तरवारि कम वधन कौं
लागत न वार भव पार जात जानी मैं।
छुवै नैकु नीर पावै पुय कौ सरीर
पाप रहै एको मासा न वतासा जैसे पानी मे॥

वृन्दावन वर्णन

कूजत कोकिल के गन कुंज मे
मत्त-मधुव्रत गुंज सहायौ।
चारु लता लपटी तरु सौं
सुकियौं तरुनी पिय कंठ लगायौ।
धार लपै जमुना जल की
चहु ओर विचार इहै चित आयौ।
नीलम की रचि हार मनौं
करतार लै श्री बन कौ पहिरायौ।।

५१ वा पद

धाम विलोकि के सूनौ धसे घनस्याम
उतार लई दधि की थरि।
घेर लियौ धर ही मे तबै
सब गोपनि की वनितानि मनौ करि।।
जोर चलै नहिं नंद किसोर को
डारी मही तब ही कर कौ भरि।
आंखि मे छाछि की बूंद परी
सब मूंदि रही दृग बूंद गए हरि।।

अंतिम

विदा देत हरि नंद को जो दुख उपज्यौ आय।
पाहन तें ह्वै कठिन हिय तासौं वरन्यो जाय।।
हरि बिन नंद निहारि व्रज बाढ्यौ विरह अपार।
मोहन के गुन गाव ही निसदिनि ग्वारि गुवार।।
भास सुख नहिं विरह मैं कहत प्रवीन सवाद।
गूढौ एकही को लगै एकहि होत प्रसाद।।

× × × ×

कह्यौ दसम अनुसार क्रम घटि बढि के कहूँ कौन।
जहा वचन जाको बनै लैहैं लाय प्रवीन।।

मोहन लीला ग्रंथ को पढ़े गुन जो कोय।
सब सुप भगती मे मिलैं गमा याहू को होय ॥

×   ×   ×   ×

माली दरजी कौं दई मुक्ति मजूरी दान।
प्रेम भक्ति द्यौ मैं नहीं चाहत हौं निरबान ॥
मोहन लीला ग्रंथ रचि मैं मांग्यौ नंदलाल।
जहा कहूँ मो जन्म ह्वै यह न भूलो हरिलाल ॥

×   ×   ×   ×

परगना गाम्रा जहा है मारनि सरकार।
गाव चनपुर म वसैं हरि कवि को परवार ॥
मारवाड म कृष्णगढ कियौ सुकवि सुपवास।
मोहन लीला ग्रंथ को तहा किया परकास ॥
सुकवि रामधन को तनय हरि कवि है तह नाम।
अगहन वदि एकादसी वर यौ गुन घनस्याम ॥
राम हुतासन गज ससी सवत माहि घटाय।
सेप रहै सो ग्रंथ को गन वत्सर ठहराय ॥

अंतिम पक्तिया लिपिकार द्वारा लिखित —

इति हरिचरण दास कृत मोहन लीला सम्पूर्ण ॥ १ ॥
मीति श्रावण वदि १० शनिवारे सवत १८८९ का ॥ २ ॥

लिपत कृष्णगढ मध्य ॥ सुभमस्तु ॥

कवि ने यह रचना कब की इस बात को ऊपर दिये शब्दो से जानना है। राम हुतासन गज ससी के अनुसार रचना काल सवत १८३३ होता
३ ३ ८ १
है लेकिन ऊपर के पद म सवत महि घटाय' घटाय का अर्थ सवत बनाने का हो सकता है परन्तु सेष रहै कहने के कारण घटाय का अर्थ घटाना होगा।

लेकिन प्रश्न होता है कि क्या घटाया जाय ? मेरे विचार से पहले संवत् घटा लें (बना लें) फिर उसमें से राम हुतासन गज ससी १५ घटावें अर्थात्

३ + ३ + ८ + १

१८३३ - १५ = १८१८ इस प्रकार से संवत १८१८ रचनाकाल हो सकता है। इस हिसाब से यह प्रति रचना के ३८ वर्ष बाद लिखी गयी है और यदि संवत १८३३ माना जाय तो यह प्रति रचना के २३ वर्ष बाद की प्रथम सुन्दर प्रति है।

मोहन लीला

मोहन लीला

। श्री राधाकृष्णौ विजयेते तमाम् ।

अथ मोहन लीला लिख्यते । दोहा ।

तीरथ सब जिन मँहि वसत ।। भव सागर की नाव ।।
सो तुलसी हरि पगु वसै ।। वसौ सु मो हिय पाव ।।१।।

सवैया ।।

माल गल तुलसी दल की नद लाल लिए मुरली विहरैं वन ।
प्रान पिया के हिया कौ हर हसि होति पुसी ललितादि सपीगन ।।
देषत ही द्रग लागि रहैं अनुराग गहै तजि काज सब मन ।
वान कटाछ कमान सी भौंह अनग के चारु निषग विलोचन ।।२।।

अथ श्री कलिंद नंदिनी स्तुति ।। कवित्त ।।

जाके तीर वासी मन ग्रान त न कासी
चित छावति उदासी विधिहू की राजधानी मैं ।।

रवि की कुमारी ऐसी मोहन की प्यारी
भव सरिता तें भारी जस जाकी मुनि वानी मैं ।।

जाकी धार होति तरवारि कम वरन कौ
लागत न वार भव पार जान जाकी मैं ।।

छुवै नकु नीर पावै पुन्य को सरीर
पार रहैं एकी मासान वतामा जग पानी मैं

अथ श्री वृंदावन वनन ।। सवया ।।

कूजत कोकिल के गन कुंज मैं मत्त मधुव्रत गुंज सुहायौ ।।
चारु लता लपटी तरु सौं सु किधौं तरुनी पिय कठ लगायौ ।।
धार लषे जमुना जल की चहुँ ओर विचार इहू चित आयौ ।।
नीलम कौ रचि हार मनौं करतार लै श्री बन कौं पहिरायौ ।।४।।

अथ सात रस ।। सवैया ।।

गेह सौ नेह तज्यौ तौ कहा अरु सीस अकास की ओर उचायौ ।।
जात कियौ सुरलोक के लागि कहा भयौ वासव कौ पद पायौ ।।
भार सरीर कौ धारि फिर्‌यौ सु वृथा जग जीवन कौं जु गवायौ ।।
ज्यौं मन मैं न कलिंद सुता तट खेलत नंद कौ नंदन आयौ ।।५।।

सवैया ।।

तप केतौ करौ धरनी मैं फिरौ धन कौन धरी जुग कोटि जियौ ।
सब देवन कौ हरि सेवन कैं मन मानतो जौं वर मागि लियौ ।।
गुरु ज्ञान गहैं धरि ध्यान रहै सु कहा भयौ जोग अनेक कियौ ।
हुलसैं सुनि ज्यौं नहिं कान्ह बषान तौ ताकौ पषान समान हियौ ।।६।।

अथ श्री कृष्ण की सुंदरताई वनन ।। सवैया ।।

छीर पयोनिधि मैं प्रगट्यौ ससि सुन्दर श्री कौ सहोदर भाई ।।
मंद कियौ अरविंद कौं रूप सौं चंद लही सुषमा की बडाई ।।
भाष्यौ विरंचि सौं चाहि कै रच म मोहन के मुष की छवि पाई ।।
आनन पै विधि थाप दई सोई छाप भई न छुटै सवराई ।।७।।

अथ जन्मोत्सव ।। सवैया ।।

नंदन होन जसोमति कौं सुर नंदन को कुसमैं बरिसावत ।।
चंदन बदन सौंर मैं गोप सु माषन नाषि दही मुष लावत ।।
देन हैं गाय लुटाय भंडार कौं कंचन रच न हू नर पावत ।।
जा सुष नंद के मंदिर आज न सो सुपन हैं पुरंदर पावत ।।८।।

नद के मदिर आवत काह के मेरु तें सोभसिरे दरसे हैं ।।
देपन चाह उछाह भरी हरि वासव की वनिता तरसै हैं ।।
पेलत हैं पय की पिचिकारनि गोप मैं आनद ओप रसै है ।।
मानौं अगार अहीरनि के घन धार पियूपनि की बरसै हैं ।।६।।

भौ सुत रानी जसौमति कौ सुनि गोप नच व्रज मोद मचाए ।।
गोकुल के सुर देपि उछाह सु चाह भरे सब ही अकुलाए ।।
अज्ञ ह्वै जज्ञ किए विहिं काम न स्याम भजे मन मैं पछताए ।।
पुय तैं वद परे सुरलोक मैं नद के ओक मैं वास न पाए ।।१०।।

रावर गोकुल के पति दोऊ रमैं हरि भादव कौ जु महीनौं ।।
केसरि के किये मोछ के वेस सु केसरि कौ रग लाय प्रवीनौं ।।
कारे है नैन के तारे तेई अलि वाढ्यौ हैं मोद कौ सिंधु नवीनौ ।।
आनद मैं वृपभानुजी नद कौ आनन कौं अरविंद ही कीनौं ।।११।।

भादव मैं दधि कादव की हरि सोभ मची न सकै कहि वानी ।।
थाल भरे मुक्तानि सौं गावत आवति है वृपभानु की रानी ।।
आनँद की सरिता उमडी सुप देपि रही नभ माहि भवानी ।।
नद की चेरी रची न विरचि तची यह पेद सची पछिनानी ।।१२।।

हमारो कियौ श्री भागवत प्रकास तहाँ कौ कवित्व

प्रगट भए ह काह सवा सुने हैं कान,
मान नीकी सुधा त सरस यह बात है ।।
गोपगन नाचैं कई गाव सुर साच,
मन हितु के राच लपैं मोद उफनात हैं ।।

दूधन न्हावैं कई मापन लगाव सुप,
सुप उपजावैं सौ तौ कासौं कह्यो जात हैं ।।
बाजत निसान देत दान ऐसे गोकुल के,
देप कैं अहीर सुनासीर ललचात हैं ।।१३।।

अथ पूतना रो प्रसग । दोहा ।

सिला पीठि पटास मही उद्धरि जु देवी वात ।।
श्रौर ठौर उपज्यौ जु तुव मारनिहार विष्यात ।।१४।।

यह सुनि कस कह्या श्रसुर चार दिन के पाय ।।
वालक मारहु नंद गृह दीनी वनी पठाय ।।१५।।

श्रादि पूतना श्राय हैं व्योमासुर लौं दुष्ट ।।
माहर तातों मारिकं करिहै देवनि तुष्ट ।।१६।।

।। सवया ।।

रभा रौ रूप सौ रूप वनाय वकी कुच कु भनि पै विष लायो ।।
श्राई है नद के मदिर मैं श्रति सुदरि देषि कछू न कहायो ।।
झूलत पालना मैं लषि लाल कौं लीनौं उचायक श्रक लगायो ।।
छीर पी श्रावति ही वलवीर कौं पूतना फेरि सरीर न पायो ।।१७।।

नंद श्रादि गोप सब मथुरा गये थे कर देने को फेर श्राए पूतना कौं वराई ।।

अथ सकटासुर वध ।

काह प चोट करो यह चाह छप्यौ सकटासुर नाहि डरै है ।।
सोवत पालना मैं नद नदन श्रानन चद कौ मद करै है ।।
लात सौ गाडा हन्यौ हरि कस की फौज कौ लाडा न देषि परै है ।।
यौ सुर सालन काल कियौ वकरा दवि ज्यौं छकरा सौ मर है ।।१८।।

अथ तृनावत वध ।।

लोपत भानु प्रताप चल्यौ व्रज कस कौ दास महावल वक है ।।
धूर समीर कौ धारि सरीर गह्यौ हरि कौ मन श्रानी न सक है ।।
प्रान हरयौ नद लाल गला गहि रछ कौ बछ र ची पर जक है ।।
पेलत है पल कै उर प मयनाक के श्रक प मानौ मयक है ।।१९।।

अथ जसोदा जी कौं सपूर्ण विस्व मुष मे दिषायो ।।

गोद लिए सुत कौं जसुदा हरि हेरति है मुष वेद उपायौं ।।
आनन बीच चराचर की रचना चप सौं लषि नेह न भायौं ।।
प्रेम प्रभावत ईसर भाव गयौ दजि नकु नही चित आयौं ।।
नीद के झोक मैं देष्यौ त्रिलोक हिए अपनौं सपनौं करि मायो ।।२०।।

अथ भादवसुदि अष्टमी प्रात समय श्री राधिकाजी को जन्म कौ उत्सव ।।

सवैया ।।

आनद वाजे वधावके वाजत,
रावर मैं उमगे नर नारी ।।
भादव मैं दूधकादव धूम मची,
वहुरौं हित कौं सुषकारी ।।
सोभ बनी अवनीकी वनी हरि,
होयगी मौज मनोज विचारी ।।
लाडिली कीरति कौं प्रगटी,
व्रज मोहन कौ मन मोहन वारी ।।२१।।

कोटिक गाय लुटाय दई पट,
हाटक द जु दियौ सनमान है ।।
वाहिर डारि जवाहिर कौं दियौ जन्म,
सुता कौ सुन्यौ जब कान है ।।
चाह सौ असौ उछाह किया मुकर,
तिहुँ लोक क नाक उपान है ।।
गाकुल चद भये दिये नदजी तामौं,
दुचद - दियौ व्रषभान है ।।२२।।

थाल भर मुकतानि की माल सों,
गावति भावति हैं जु बधाई ।।
नाचत चाए नटी नट के ठट,
धग मृदगनि की धुनि छाई ।।
भानु सुता प्रगटी सुनि कै,
सुर फूलिकै फूननि की भर लाई ।।
डारति हीरनि कौं सब वारि,
अहीरनि की बृजमाहि लुगाई ।।२३।।

कीरति की तनया उपजी जिय मैं,
उमगे सुनि कानरमी है ।।
राघर के सुप देपन कौं
सुर राजहु की वनिता तरसी है ।।
वारन की मुरतानि की रासि,
परी सब वारन मैं दरसी है ।।
टोलन टोलन मैं ब्रज के मनौं,
श्रौलन की बरषा बरषी है ।।२४।।

अथ भादव सुदि जसोदाजी एकादसी जल पूजन कीयौ ।।

सवया ।।

पूजि क पानी जसौमति रानी पठावति है घर गोप के वायन ।।
थाल मैं लाल लै लाल प वारति माल अनेक लुटावति चायन ।।
आनद भौपुर मदिर म सुर अदर सुदरि गावति गायन ।।
पारति है कुल देव के पाय पर कुल देव गोपाल के पायन ।।२५।।

अथ नाम करन

दोहा ।।

रोहिनेय को नाम सुनि, गग कह्यौ वलदेव ।।
मुसली सकषन कह्यौ जानत हैं सब भेव ।।२६।।

कृष्ण कह्यौ माहन कह्यौ, फेरि कह्यौ घनस्याम ।।
भएक वै वसुदेव सुत, वासुदेव यह नाम ।।२७।।

अथ बाल लीला ।।

सवैया ।।

दमकी दुति दतनि कौन तऊ मन आनन ईंदु निहार छकै ।।
घर की गनती न तियानि रही मति नद के मंदिर मैं बिथकै ।।
कर राषि कैं ठोडी पे बाल कोईक हसाय हसै उतला पटकै ।।
हरि हेरत कैउफनाय रह्यौ मुदमाय हिए न समाय सकै ।।२८।।

मातु लष द्वय दातनि की रुचि सावरी सूरति मोद बढावति ।।
भाई भुजा कटिछीन लसै हरि कक्न किंकिनी की।छविछावति ।।
काहूके पावनिकी सुषमा नपपाति लष मनमैं यह आवति ।।
बंधु मौ सधि कियौ मनु चाहति चद कला अरविंद मनावति ।।२६।।

प्रानन के प्यारे व्रज लोचन के तारे होत,
मन त न्यारे रूप देप सबही जियें ।।
नन अनियारे मैन बन जापै वारे,
कहा पकज विचारे सम भामत नही हिये ।।
ऐसो कान्ह साधु सौ वपान चरनामृत कौ,
सुन्यौ देष्यौ होति राजी बूंद एक के लिए ।।
सतन की वानी ताकौ पारपि का ठानी कहैं,
साचौ कथौ भूठौ यौ अगूठौ पाय को पिए ।।३०।।

अथ दिठौना वनन ।।

कुद कलीनि को मद कर हरि दतनि की छवि अग मनोहर ।।
भौहैं हर रचि काम कमान की जीतत नैन मनौ भव के सर ।।
आनद इदु प काजल विंदु विराजत अंस मनौ सुपमा घर ।।
कैधो छपाव को सावकरी मकरद पिवै अरविंद के ऊपर ।।३१।।

नद कुमार कौं साजि सिंगार सुमोद भरी हसि गोद मैं लीनौ ।।
हेरि रही मुष की छवि माय लष जिहिं लागत चद मलीनौ ।।
आनन काजल विंदु विलोकि कहै अलितू वलिनी नीकौ कीनौ ।।
दीनौ डिठौना न डीठि लग पर क पर डीठि कौ आसन दीनौ ।।३२।।

सजनी गन में जननी जसुदा लषि,
मोहन कौं मन मोद भर ।।
करताल द ग्वालि वलावति लाल कौं,
प्याल कर तिहि ओर ढर ।।
अवलोकि कै आन के आनन कौं,
फिर आय जसोमति ही सौं अर ।।
उठ नाहि सक वट नाहि नलै हसि,
लेति है माय लगाय गर ।।३३।।

आनन चद त चौगुनो चारु मनोहर मूरति का्ू सुहाए ।।
आयकै ग्वालनि की ललना चहैं वोलन मोहन कों जु मिषाए ।।
भाई कहौ फिरि माई कहौ हरि नद जसोमति हू कहवाए ।।
मामा कहौ कई वामा कहै यह नाम सु स्याम घनो मुसक्याए ।।३४।।

मजुल पावन मैं घुघुरु रव जीतल रग सौं अग तमालहि ।।
नीकी लग धुनि किंकिनी की डिगतै डग देत रिझावत वालहि ।।
आगुरी लाय के माय चलावति आगनि मैं हरि नन विसालहि ।।
आय इहा क्नि देपि भटू मन होत लटू लषि लाल की चालहि ।।३५।।

कीरति रानी सुता लिए गोद सु मोद भरी जसुदा गह आई ।।
लाल लडैती सौं प्याल रच्यौ ललितादिक वीच मै रापि मिठाई ।।
दौरे दुहु ठुहु औरसो लेन को आई लई व्रपभान की जाई ।।
आनन चद की ओर चकोर से हेरि रहे टक नाय कन्हाई ।।३६।।

कौतिक राधिका मोहन कौ कोई,
जोहन कौं ल्याई गोपकुमारी ।।
सावरो गोरी के सग रमैं हरि,
भोरी पीयूप सी वात उचारी ।।
हाथ लटू वृजनाथ लिए छवि,
देपि छकै सव देषनिहारी ।।
षेलत नद के आगन मैं
नद नदन औ वृजभानु दुलारी ।।३७।।

इदु सो आनन लोचन वान से,
राजत भौहैं कमान कसीसी ।।
कोमल अगनि के लपि रग,
अनगहु की समता है फीको सी ।।
ग्वालनि की ललना विच लाल,
नचैं वृज वाल रहैं है छकीसी ।।
पाय पर डिगु लाय मही उमही,
सवही हिय मोद नदी सी ।।३८।।

पावन पावनि मैं घुघरू भनकै रसना कटि माहि सुहाई ।।
सावरे गात पयोज के पात से लोचन वात सुधारस छाई ।।
केहरी की नप कठ लस लपि लाजति चदकला की निकाई ।।
पलत वालक मैं अति सुन्दर नद के मदिर माहि कहाई ।।३९।।

वाह गहै वलदेव की मोहन पेलत आगन मैं न रहैं थिर ।।
रोकि रई कर सौ करप हरप मन माय लगाय हियें फिर ।।
मापन मागत चापन कौं अभिलाप भरी जननी सौं हठ चिर ।।
वाल की प्याल निहार सव कहैं सौहैं दो चद री नदकौ मदिर ।।४०।।

गौद मैं वैठे गोपाल लस मनौ आनन चद मैं कोटि कला हे ।।
लाल गलै मुक्ताननि की माल मनोभव त तन रूप भला है ।।
देपि हस छवि माय पुछै हरि पायो परी तु कहू कमला हैं ।।
जा सुप मोहि नही सुपन तुहि मेरी सोभागन तेरी लला है ।।४१।।

कचन को वछग सुरभी वनवाय कै नद दियौ सु पिलावै ।।
ग्वाल पनौ सिप वालपना त निहाल कर जिंहि ओर चितावै ।।
घाम लगाय क पास पडे रहैं हास कै कोई सपा सु नौं आवै ।।
सोहनी सूरति मोहनी मूरति दोहनी लै कर गाय दुहावै ।।४२।।

चारु रची चाटि आनद रानी सिगारि क फरि पवायो है पानन ।।
घूघुरवाली छुटी अलक मुप क जु प मजुल छूय के कानन ।।
आरसी मैं हरि देपि छके छवि जीतत लोचन काम के वानन ।।
माय कहौ हमसौ किन साच सू चद सी काज मैं कौंन की आनन ।४३।

जामाल से पीत ताप हीरा की हमेल हार,
ऐसी छवि निरप नयन वडभाग के ।।
लाल गलें सोहै लाल तिलक विसाल भाल,
अ ग अ ग रूप के पयोधि विन थाग के ।।
गोद मैं लिए हैं अति मोद भरी नद रानी,
हसि हसि वचन उचार अनुराग के ।।
आनन पें अलक भुलत वँधो लोटत हैं,
कज के विछौना पर छौना काले नाग के ।।५४।।

आप पाय मापन पियाए ग्वाल वालनि कों,
लालन लुटाई है मलाई वन चारी सों ।।
पी गए हे छीर कँई छोहरे अहीरनि के,
आवति निहारि डरे काहू महतारी सों ।।
कारौ सुत दैकें गोरी सुता बृपभानुजी सों,
लै हौ कह्यो जसुदा रिसाय वनवारी सों ।।
परौ तेरे पाय अव तज्यों औट पाय मति,
मोहि पलटाय माय कीरति कुमारी सों ।।५५।।

उराहनौ ।

जव जसोदा जी कों पुत्र नही थो तव कोई पुत्रवत्ती पुत्र कौ उराहनौ देती तव जसोदा जी कों सुनि क आपिनि मैं आसू आवतो। हमारे भी पुत्र होतौ तौ हमकों भी कोई उराहनो देतौ सो वात इयादि करि वृज देवी सव जसोदाजी कों उराहने कौ सुप दिपावै है ।। कृष्ण दूध दही पायौ है तासों नही ।। कृष्ण तौ वृज वासिनि कों प्रानहुत प्रिय हैं ।।

दोहा

दूध दही मापन धरे राषे दही जमाय ।।
कहै भाग मेरो वडो ज्यों जैवै हरि आय ।।५६।।

कवित्व ।।

काहू कौ उराहनौ तनै को सुनि नदरानी,
भर लेती नैन कहै गोप की किसोरी है ।।
दूध दही नापि नवनीत अभिलपि चापि,
मही फिरै वही काह मथनी कौ फोरी हैं ।।
जसुदा रिसाय नदलाल कौं रही चिताय,
कह्यौ हरि याहि परी झूठि ही की ठोरी हैं ।।
माय सौं छपाय आप मापन कौं पाय,
आय देषौ वरा जौरी ग्वालि लावै मोहि चोरी है ।।४७।।

बतीसा ।।

मोहन मदन को वदन चारु चद हूतै घर लषि,
सूनौ कर मापन मापन लियौ उचाय ।।
घात लाय गोपी पात गह्यौ नद नदन कौं,
याही समैं भाय जसुमति तहा गई आय ।।
चोर कहि गही वाह जोर कछु चलै नाहि मेरौ,
सुत औरै मनि थभ मै दियौ बताय ।।
हेरि निज छाही रहे चकित की नाही,
कहै दूजो महरेटौ एतौ वेटो मैं तिहारो माय ।।४८।।

रोकि तू मोहन कौं जसोदा थर,
दूध दही पर की गटकी हैं ।।
फौरि धरी छिछिआ घर मैं,
हरि छाछि ढोराय दयी घटकी हैं ।।
गोरस छीका धरचौ न वचै कछू,
जानत काहू कला नट की हैं ।।
कोन सकैं हटकी भटकी इन,
मापन की मटकी पटकी है ।।४९।।

पायो दही घट मायो है माषन आय गई जसुदा तब ही नषि ।।
गेह सों ग्वालि बनाय ले ग्राई कहो रिस दूध दही सों सरों रषि ।।
चोरी सों तोहिपरयो चसको रहि मायलला पर सास्म सों चषि ।।
मोहनको तससीरभुली थकि सी रही जानि सों निरखी लषि ।।५०।।

छोटी छूटी जुलफें कपालनि प लाल लसैं
हम तब दातनि की दमक रहत छाय ।।
आनन पयोज लषि लाजत मनोज कहैं
चौज भरी बातें हर मन को गहै रिझाय ।।
एस कहै सारह गाप बधू जा रहति आनि,
सुन दें तें बासन बिनान को सबै उठाय ।।
माषन की चोरी लाव ब्रज की किसोरी
मैं तो हाऊ के डरनि माय बाहिर सकौ न जाय ।।५१।।

सवैया ।।

जाय जसोमति सों कहनो हरि लाडिलो ऐसो कियो त कन्हाई ।।
चोर से आय घुसे घर मैं नहि छीर बच्यो न बची है मलाई ।।
जागि उठी पैंन उठि गयो रची बालपना मैं इती चतुराई ।।
नीद म माहन मो चोटि आपटि आली भटू पडिया अटकाई ।।५२।।

धाम निलोकि कै सूनो घसे घनस्याम उतार लई दधि की थरि ।।
घेर लियो घर ही मे तव सज गोपनि की बनितानि मतो करि ।।
जोर चलै नहि नद किसोर को डारी मही नव ही कर को भरि ।।
आषि म छाछि की बूद परी सब मूद रही हग बूदि गए हरि ।।५३।।

साई वधू मुष लाय क माषन पाट म डारि दीयो करि परो ।।
गोपन की बनितानि बुलावत आय यहा किन कौतुक हेरो ।।
चौरि कैं गोरस चाषित अपसु माय सो देनि उराहनो मेरो ।।
रोस बनाय व जोम सौं बालत देषत होस गयो सब केरो ।।५४।।

देषत मोहि न भावत माषन अस कहैं सब ग्राम कन्हाई ।।
डीठि बचाय घुसे घर म न बच घृत दूध दही की मलाई ।।
प्रीति पगी घर आय उराहनो देत जसोमति की जु लुगाई ।।
चौरि क पात सहात घनो भयो छोकरो तेरो चटोकरो माई ।।५५।।

अथ मतिका भछन ।।

फेरि श्री जसोदाजी कौं मुष म सम्पूर्ण विश्व दिषायौ ।

सवया ।।

सावरे अग अनग त सुदर सग सपान के काह विहारत ।।
जीभि प लाल लई वृज की रज आनद सौं रस कौं निरधारत ।।
ग्वाल के बाल कही जसुदा रिस सो कहै आनन क्यौं न उघारत ।।
षोलत ही मुष लोक लष ज्यौ मजूस म चित्र जलस निहारत ।।५६।।

अथ दामोदर लीला ।

कुबेर के पुत्र नलकूवर मन ग्रीव नारदजी के स्राप सौं जमलाजु न भए थे नद जी के द्वार प इन्द्र की पूजा की मिठाई कृष्ण जूठि आई तब जसोदा जी उषल लगाय दांम सौ बाध्यौ सो उषल लगाय क दोऊ बछ्र को तोरचौ तव जमलाजु न फेरि कै आपने लोक गए ।

गात गुलाब के फूल से कोमल इदु सी आनन की जु निकाई ।।
सुदर ऐसो गोविंद प रोस कियौ कहा पाय लई ज्यौ मिठाई ।।
दाम त स्याम कौं बाध्यौ निकाम भए तरू टूटत राम महाई ।।
प्रान की प्रान सो जानत तू हरि यौ मति कैस जसोमति आई ।।५७।।

अथ श्री भागवत प्रकास को सवया ।

जो नौं न आपु लहै कछु षेद कहा वह वेदन आन को जानै ।।
आजु लौं वेई हुते तरु जड़ उधारेन क्यौं हरि काहे भुलान ।।
मातु दियौ जब बधन काह को रूपन के दुष कौं तब मानैं ।।
देषौ इहै अपनेई सरीर पै भीर परे पर पीर पिछानैं ।।५८।।

अथ व्रज देवी सव श्री कृष्ण कौ नचाव ।।

गोपन की रमनी रमनीय निहारति है हरि के मुष को सव ।।
लाल नचो वृज वाल कहैं यह ग्वाल परी रस सों पगिकै जव ।।
मान प पाय पर अपनी मैं रचावत चित्र बनावत भावव ।।
नैन लचै कछु ग्रीव मुच ललच तिय वा मन काह नच तब ।।५६।।

अथ श्री वृन्दावन गमन

दोहा ॥

> असुर अगु उपजे किते श्रीगोकुल म आय ॥
> नद लाल ल्पारी रची दीने तिन्हहिं पठाय ॥६०॥

गोकुल में उपद्रव देषि श्री वृन्दावन कौं गोप चले
अथ श्री वृन्दावन वनन ॥

सवया ॥

वास वसत वौ मजुल कुज म गुजत भौंर हर सबकौ मन ॥
सूर सुता तट धीर समीर रही सुषमा गहि मानौं लता तन ॥
हेरत मोहन की अटवी घट वीस विस है कुवेर हू कौ धन ॥
इद को नदन मद लग निरष चप सौं नद नदन कौ वन ॥६१॥

गोकुल के तह गोप वसे हुलसे अति गाय की पाय चरी है ॥
सोभ कलिंद की नदिनी की अरविंदनि की मन लेत हरी है ॥
फूल के नद कुमार सिंगार रचे कर फूल की लीनी छरी है ॥
श्री मनु मजुल कजनि को तजि पज ह्वै कु जनि माहि परी है॥६२॥

पात लसै थल की नलिनी हरि रंभन ही छवि जंघ लसी है ॥
फूलनि के गहने सब्र गान मैं पात मैं सारी की सोभ वसी है ॥
प जन नाहि स अजन लोचन चारु चलाय कै नेह फसी है ॥
नद कुमार निहार मनौ दर कीन अनार वनी विहसी है ॥६३॥

सीतल मद सुगध समीर हर चित भौंर की भीर घनी है ॥
ऊडत है न पराग रमै तरु नाह सी फाग लता रमनी है ॥
पीत औ स्याम कहूँ कुसुमावलि रेष सी देषि परै वरनी है ॥
कूल कलिंद के फूल नही यह रेसमी ओढ दुकूल वनी है ॥६४॥

अथ वत्सासुर वध

दोहा ॥

> वछ रूप धरि असुर इक, आयौ वछरनि सग ।
> पटक्यौ ताहि कपत्थ पै मोहन सोहन अग ॥६५॥

अथ वकासुर वध ।।

।। श्री भागवति प्रकास कौ कवित्त ।।

काल सुरसाल के नच्यो है आय भाल पर
सो न जानें वैर मन पूतना को धरतौ ।
चाचन उचाय मनमोहन कौ गह्यौ आनि
तज्यौ हरि तेज ही त देख्यौ मुप बरतौ ।।
आनन विदार महि मीडि डारयौ दानव कौं
देवनि निहारयौ प्रान देह त विछुरतौ ।
मारयौ है वकासुर को आसुर पुकार कहै
तेरी जीति होती मीन रूप सौ जौ लरतौ ।।६६।।

अथ भादौ वदि द्वादशी सौं बछरा चरायवे लगे ।।

दोहा ।।

भादौं वदि तिथि द्वादसी, सुभ नछत्र सग ग्वाल ।
लेन भए कुल धम कौं वतसपात गोपाल ।।६७।।

अथ छाक लीला ।।

ग्वाल के वालन की रचि मडली वीच में स्याम लसै मन रोचन ।।
कोमल अगन की सुपमानि त होत अनग गुमान कौ मोचन ।।
हास कर हरि पास सपान सौं आसुर म उपजावत सोचन ।।
लेत गरास परास के पान म जेवत छाक छकावत लोचन ।।६८।।

सु दर काम त कोटि गुनौ गुन जात वपानि नही नदलाल के ।।
चापि कै चप्पी चपाव सपानि कौं राजत है हरि नीच तमाल के ।।
जोर वनी तरकारी परीर की केते प्रकार हैं दाल के आल के ।।
पाव सुधा न वरावरी जाकी वरावरी जेंवत वालक ग्वाल के ।।६९।।

सपि कूजत पछा पछिन वे गन मोर जहा चहूँ ओर नचै ।।
हरि साक औ पाक अनेक सौं छाक अरोग सपानि सौं मोद मचै ।।
पर आनन म तरकारी तरी ओवरीनव गाय क प्याल रच ।।
सुप देपि कै ग्वाल के वालनि के दिक्पालन की मनसा ललचै ।।७०।।

जेंवत गोपन म मन मोहन कु ज म गु ज की माल गरे हैं ।।
पीत पटी लपटी कटि छीन सा अ ग अनग के मान हरे हैं ।।
चापन लाल कर मुप मापन वापन यों सुपमा उचरे हैं ।।
छाडि विरोध कों सीत मयूप में पक्ज मानों पीयूप भरे हैं ।।७१।।

मन मोहन जवत चाप सपान चपावत हैं तरवारिन कों ।।
कपि पोत कपोतन कों कछु देत लप कछु भील की नारिन कों ।।
तरस सुर सीत प्रसाद के स्वाद कों पात लषें वनचारिन कों ।।
हरि जूठनि की कनिकान मिलै कवहीं कनकाचल चारिन कों ।।७२।।

साझ समै वछरानि लिए व्रज आवत मोहन गद उच्चारत ।।
आलि लस कटि काछनी की छवि फूल की माल मनोहर धारत ।।
गोरज आनन प लपटी अपनी पट लै कर नद उतारत ।।
कैधौं मयक को मेट कलक कै कज को पोछि पराग उतारत ।।७३।।

अथ अघासुर वध ।। श्री कृष्ण जी वछरा चरायबे जाय थे वीच में अघासुर मुप फारि वैठयौ

गोधन को मग रोकि लियौ अ त आनन वाय कै रोस छयौ है ।।
पेट म पठि गये सब ग्वाल समेत गुपालनि सोच भयौ है ।।
भार अपार परयौ तन म न सभार सक न सकै उचयौ है ।।
तेज हुतासन सो हरि को लहि अग सुरग सो फूटि गयौ है ।।७४।।

अथ वत्स हरन ।।

दोहा ।।

बिध पारप हरकी करत चौम्हहा म आय ।
ग्वाल वछ हरि क रणे माया माह सुवाय ।।७५।।

व्रज गोपिनि कों गाय कों यह मन आठौं याम ।
होहि पुत्र मेरे कवै सु दर तन घनस्याम ।।७६।।

पूरत भक्त मनोरथहि वेते वछरा ग्वाल ।
आपुहि वेही रूप सों भए तवै नद लाल ।।७७।।

वरप वित्यौ विधि आय कै मन म अचरज मानि ।
ग्वाल सहित बछरा दिये प्रभु की अस्तुति ठानि ।।७८।।

अथ ब्रह्म स्तुति ।।

सवैयो ।।

ग्वाल समेत हरे वछरानि अहो हरि ईसुरता तुव तोलत ।।
तेते वनाय लिए सवही तुम वसौही रूप औ वैसें ही बोलत ।।
चारिहु आनन सौ चतुरानन यौं कहि के अपराध कौं छोलत ।।
कोई पचास नही तुव माया के पास वधे सबही सुर डोलत ।।७६।।

अ गन मे तुव लोक अनेक गने नहिं काहू सौं होत निवेरौ ।।
मोमे किते करतार तहा सव ही प रहै तुव माया को घेरौ ।।
यो अपराध हमारो छमो निज सेवक जानि सुदृष्टि कैं हेरौ ।।
मैं हर रावरी यो समता करौ मो समता कौं करै ज्यों चितेरौ ।।८०।।

अथ गो चारन लीला कार्तिक सुदि अष्टमीं कौं नदजी श्री कृष्ण को गाय चरायिबे कौं पठाए ।।

सवयौ ।।

मोहन गोप के गोहन म वन जायकैं गाय चराय विहारैं ।।
वसी वजाय रिझाय कैं ग्वालनि साझ परे ब्रज ओर पधारं ।।
आनन चद को मद कर पलनौं हिलग जिहि ओर निहार ।।
काम ही के हरि रूप गरूर की मोर की पाप मरोरि कैं डारैं ।।८१।।

कवित्त ।।

सुवल सुवाहु मधु मगल सपा है साथ
गए कान्ह गोधन चरावन सकारे है ।।
ठाढे तरु छाही दिए गोप गरवाही
मन देपत विकाही व्रज वासिन के प्यारे है ।।
गोरी राग गाव सग गायन के आव
तिय देपत को धाव फूल माल गल डारे है ।।
भृकुटी कमान जुग लोचन है वान
तेतौ औनमन मन के निपगत निकारे है ।।८२।।

सवयौ ।।

फूलनि की मपतूल की डारिनि माल रची वस होत जो जौहै ।।
गावत गोधन सग सपानि के चद हू त मुप चद भलौ हैं ।।
कामरी सौं जिम स्याल सतिम पामरी सो सपि कामन सौहै ।।
आवति है पहिर तनिया व्रज की कनिया छवि देपत मौहै ।।८३।।

ग्रय धेनुक वध ।। श्रीदामा सखा बलदेवजी सौं कह्यौ श्रीकृष्ण जी सौं कह्यौ इहा निकट ताल बन है ताल के फल पक्के हैं मोहि दिखावौ ।। तहां सपरिवार एक धेनुक नामा असुर रहै है ।। वाको खर को रूप है सो जौं श्रावै तौ ताहि मारौ ।।

दोहा ।।

मोहन श्रौ बलदेव सग गए तहा सब गोप ।
तोरन लागे ताल कौं दोरयौ असुर सकोप ।।८४।।

बल प लात चलाय कैं फेरि चलाई श्राय ।
पकरि कोप सौ पग लिए पटक्यौ ताहि घुमाय ।।८५।।

बल मोहन मारे तहा ताके जिते सहाय ।
राजी करि सब गोप कौं श्राये वेनु बजाय ।।८६।।

ग्रथ कालिय लीला ।। सोभरि मुनि तपस्या कर थे ह्रद के तीर ।। तहा गरुड श्राए एक मछी मारी तब मुनि स्राप दियौ ।। ज्यौं गरुड इहा श्रावै तो मरै यह सुनि क काली तहा रह्यौ गरुड के त्रास सौं ।। ताकौं निकारि क कृष्ण रमनक द्वीप कौं पठायौ ।।

कवित्त ।।

छूव कोई नीर नही जाय सक तीर लाग
ह्रद कौ समीर सोउद्दोत दुपदाई है ।।
श्रायौ कोई काल बडवानल की ज्वाल किधौ वारिध
त श्राई किधौ वासुकि की भाई है ।।
धस्यौ तहा मोहन मझार धार कोहन सौ
पोहन में ल्यायौ गहि सपान सहाई है ।।
सीस दक पाय नाच मुरली बजाय
जसें थाला पर नट काली फनय कन्हाई है ।।८७।।

श्री भागवत प्रकास के कबित्त ।।

कटि मैं लपेटि पट घाट के विटपि चढे,
कूदत करोर काम समता न लाल की ।।
जमुना को पानी राजधानी भई पन्नग की,
पछि हू वरन हैं तपत विप ज्वाल की ।।
प्याल ही सौं काली के कपाल पै नचत स्याम,
हाथ जारि कीरति उचारी वाम व्याल की ।।
परयौ हैं गरद व्रज चाह हृद यगि रच्यौ,
करद सी लागी उर दरद गोपाल की ।।८८।।

एतौ सोच काहे को करत नदरानी आज
पानी तै तुरत आयौ देपि लै कन्हैया कौ ।।
काली कौ विटारि मान मारिवा कौ पायन सौं
निमल करैगो नीर पूछवल भया कौं ।।
पूतना के कूच को पचायो काल कूट वैमो
विप सौ नत्रास हरि मान तुव छैया कौ ।।
अव लौं न ऐसी तेरे कानन मैं परी वात
आय है लहर कहु जहर पवैया कौ ।।८६।।

अथ दावाग्नि पान ।। काली निकरे पीछैं नदादिक गोप गोपी श्री कृष्ण सहित जमुना तीर ताहि रात्रि रहे वासमैं दावाग्नि चहु ओर कौं लगी तब भक्त वत्सल ब्रज कौं आरत देपि कै दावाग्नि वुझाई ।।

सवयौ ।।

दाव हुतासन आय लग्यौ चहु ओर सौं आसनि सौं भयौ सौर है ।।
आपि मिचाय अचाय गये हरि गोपी सराहत कान्हको जोर है ।।
रभा सी एक कहैं सजनी मतिमानि अचभारी वारज थोर है ।।
क्यों नही आगि चुग मन मोहन राधिका को मुप चद चकोर है ।।६०।।

अथ रितु बनन ।। रितु वर्नन करि पीछे प्रलंबवध दावाग्नि पान कहेंगे ।। इहां कछु भागवत के क्रम सौं फेर है ।।

अथ वसंत वनन ।।

कवित्त ।।

ठौर ठौर भौंरन की भीर होत कुंजनि मैं,
आए हैं वसंत साथ कोकिल रिसाए हैं ।।
चातक चकोर मोर कीरन की भीर मची,
तरुनि सी तरुन लतानि अंग लाए है ।।
करें तिय मानन कमानन सी भौंहे,
तानिए ही काज मे न महाराज के पठाए है ।।
जोगी तन तापिवे कौं विरही सतापिवे कौं,
मेरे जान काम के तमाम वीर धाए हैं ।।६१।।

सवयो ।।

सीत सताई वनी वनिता पति पाय वसंत हिए हुलसी है ।।
फूल के मानी दुकूल बनाय लता तरु सौ लपटाय लसी है ।।
नू तन नूत के मंजर मैं गुन सी अलि पालि सुभाति वसी है ।।
लायक बान तियानि के मान प कोपि क काम कमान कसी है ।।६२।।

ऐसौ वसत म श्री कृष्णचद्र क्रीडा करते भए ।।

अथ ग्रीषम वनन ।।

कवित्त ।।

विषम प्रताप जग ग्रीषम कौ फल रह्यौ
नाह का न कोई रूपी नजर निहारि है ।।
तरुन कौ छहरी न छोडति दो पहरी म
नलनी विलोकी रही वारि अंक धारि है ।।
सीत कैधौ भीत ह्वै सजोगि निनरी मैं पैठ्यौ
बैठ्यौ क दरी म कौन सकत सभारी हैं ।।
हेतन सौं वधि ह अचेतन निहारि धूप
चेतन कौ जाहि मीनकेतन न मारि है ।।६३।।

अथ वरषा रितु वनन ।।

गाज सोई वाजत है दुदुभी गगन माहिं,
चातक चकोर गावै मगल उछाह सौं ।।
भूधर वनी म अवनी में मत्त नाचै मोर,
कामिनी सी नाचै भभदामिनी सुचाह सो ।।
परत फुहारे न गुलाव पास धारन सौं,
सीचत धरनि औ तरुनि हित राह सा ।।
वरिवे कौं जाति मोती माला वग पाति लिए,
ह्वै हैं आजु रितु को विवाह वारि वाह सो ।।९४।।

सवयौ ।।

सोभत स्याम घटा घन की चहु कौंद मे वीजु छटा छहराही ।।
चातक मोर के सोर हरै मन सीत समीर सह्यौ नहिं जाही ।।
पावस मैं बनवास वनैन हियौ तपसी चित मैं पछिताही ।।
जायगो जोग जौ पचि रच्यौ सरमा सरमो गरमी रितु माही ।।९५।।

मोरन नचाव चित कामिनि के भाव दामिनि
क्यौं दमकावै एसो आयौ वारिवाह हैं ।।
वृदा की वनी की सोभा भलो अवनी की छवि
गोप रमनी की लपि वाढत उछाह ह ।।
सुरग हिंडोरै घन घोर ससिमुषी झूल ऊचै
नभ ओरै राजी होत रति नाह हैं ।।
वदन सोहात चारु वनी फहराति मानौं
भाग्यौ जात चद पीछ लाग्यौ जात राह हैं ।।९६।।

सवयौ ।।

श्रीवन मैं वन मोरनि सोर मचायौ घटा घन की नभ सौहैं ।।
झूलत हैं रति सी बृजवाल जिन लपि काम हू कौ मन माहैं ।।
झूला की झोक सा आनि परयौ कुच पै कच ताहि सपी इमजोह ।।
मारयौ है मैंन मनोहर के गर पास इहै पवनासन को हैं ।।९७।।

अथ सरद रितु वनन ॥

सवैयौ ॥
राजै सुधाकर की किरनै निसि दूर लौं सूर सुता जल धार मैं ॥
ल अलिगध कमोदन के पिव मालती के मकरद कुआर मैं ॥
सेत कौ रेत निकेत लप पुलिन विच आवत ऐसौ विचारि मैं ॥
चूर ह्वै चद को मार परचौ महि सावरौ देषि परै है मझार म ॥९८॥

श्री भागवत प्रकास कौ कबित्त ॥

सेत नभ नीरद निकु जनि मधुप पु ज गु ज ।
वनराज नागराज छबि छाई है ॥
जमुना सलिल सुछ लता तर गहै गुछ ।
वृछन प पछिन की वानी सुपदाई है ॥
सु दर समीर काम कर म धनुष तीर ।
एक लीन वच वीर मदन दोहाई है ॥
जामनी म जुग मति छोडै भूलिहूतें बाल रहिए ।
नरद सी सरद रितु आई है ॥९९॥

अथ सीत रितु वनन ॥

वूझत है चकवा चकई कहै कैसी भई विधि रात वढाई ॥
भानु के प्रान समान हुती अति नीकी वनी नलिनीकी सुकाई ॥
रूपन के सब पान वरे तरुनीगन मान मक न वनाई ॥
कोनहि की चरचा सब श्रोन म आय कै सीत अनीत चलाई ॥१००॥

कवित्त ॥

वारे तरु पात गिए छोट दिनमान गहि ।
ग्रीषम का आनि तिय छाती म छपायो है ॥
राति करा भारी रवि जोति मद पारी ।
मार पापन उतारी ओम जासहि वढायो है ॥
रानी ह हिमानी लापि दीनी वेद मानी ।
रापी कोन की कहानी सब जीवनिधु जायो है ॥
छाडो मद्र माना मृग छाना नव वाना ।
गहो पर जनवाना मतवाना पूम आयो है ॥१०१॥

आवत सीत के भीत भये विरही पिय पै तिय भाहनि तानी ।।
बूक्त है गन कोकनि के गरमी तरनी तन माहि समानी ।।
नाह के तेज कौ हीन विलेकि कै बूडि मरी नलनी रिस ठानी ।।
घौम सा जामिनी रोस करचौ सुपर मिस ओस के नन सो पानी ।।१०२।।

अथ ससिर रितु बनन ।।

जोगी नियागी उरै समिरै लपि नाह भयौ रहै नारि नजीकी ।।
नाचत गावत चग वजाय क गारी लग अति प्यारी नरी की ।।
रीत अलोकिक लोक म रापि सबै रितु डारि दई इन फीकी ।।
राजै जहा वय सधि सी सु दरि सधि इह सरदी गरमी की ।।१०३।।

अथ बसत पचमी ।।

सवयौ ।।

आई बसन्त वदावन कौ मन भावन का सब गोप वधूटी ।।
लाल विलकि क जान उरी ठरि सा चित लीनो है का ह चूहटी ।।
भाल प बदी गुला की दन नसै अलकै पलक छुइ छूटी ।।
यौ सुपमा लपि क कहि आवत चद चिपी मनो वीर वधूटी ।।१०४।।

अथ होरी ।।

होरी मची वृपभानु सुता हरि प जु गुलाल की मू ठि चलाई ।।
नाह के चित अदायें चुभी आ पुनी उलट भुज की जु गुराई ।।
चाहत केसरि डारा कौं सु सपी कह लाल तपी चतुराई ।।
देपहु अग के रग निहारि क सोनाय लावो न गोना कहाई ।।१०

हमारो कियो रस बिचार सभा प्रकास तामैं को कवित्त ।।

आवति सहेनी ललजोली होरि पेलबे कौ
भूपन वसन नीको टीको लसे भालप ।।
गहे पिचकारी करी कु दन सवारी मानों
कचन की वली चनी मिनन तमालप ।।
लोचन नचाव चित पी को ललचाव
नरी देपन की चावे गारि गाय गुरतालप ।।
घूघट म दुर भूठी मूठि उठ
मुर तिय क मोरग डारै रग डारत गोपाल पैं ।।१०६।।

अथ प्रलब वध ।। श्रीकृष्ण बलभद्र खेल थे काधे चढाय क सखा को कोई ठेकाना ताई पहुचावनो प्रलब सखा को रूप धरि बलदेवजी कों कांधें चढाय ले चल्यो पीछ्र आपनो रूप धरचो तब बलदेवजी मू को की मस्तक प दीनी सिर फाटि गयो तब देवतनि स्तुति करी ।।

दोहा ।।

> बाल ग्वाल म कध धरि बल कों चल्यो पराय ।।
> मारचो तब प्रलब को परचो मही म आय ।।१०७।।

फेरि दावानल पान मु ज के बन में श्रीकृष्ण सखानि सग गाय चराव थे तहा दावाग्नि लगी ताको पान कियो ।।

> मज बनी मे दाव लखि उठे गोप अकुलाय ।।
> पान का ह ताकौ कियौ सबकी आखि मिचाय ।।१०८।।

अथ बेनु गीत ।।

> घन त सरस स्याम सोभ वपु अभिराम
> मद मद राजै चद माहि हासी ह ।।
> पीत पट धार बृ दावन। म विहार
> काम रूप मद हार जुगलोचन ज्यों गासी है ।।
> आनन सो लागी अधरामृत सो पानी कर
> सबै अनुरागी बेनु बाज एक सासी है ।।
> बास ही के चाप तें चलत बान हरैं प्रान
> वा सही की तान गृह काज लाज नासी है ।।१०९।।

अथ चीर हरन ।। अगहन में व्रजकुमारी कात्यायनी कों व्रत करि श्री जमुनाजी में स्नान करिवें कों गई तहां श्रीकृष्ण उनके प्रेम देखिबे कों चीर ले क कदब पर चढे इनकी हमसों बहुत प्रीति है क लाज सो बहुत प्रीति हैं सो व्रजकुमारि कनि लाज को तिरस्कार करि जो जो श्रीकृष्ण कह्यो सो उन किये तब वर दिए हम तुमसों रमन करें हिगे ।।

सवैया ।।

वारि मैं गोपनि की तनया विहरैं सब तीर मैं चीरन कौं धरि ।।
लै कपरानि कदंब चढे मु रहे हित सो पगि कौतुक म हरि ।।
कसो है हत विलोकनि कौं निकसीं जल सौं नदलाल कह्यौ अरि ।।
लाज लिए सब देह तज इन नेह प लाज करी नव छावरि ।।११०।।

अथ द्विज पत्नी प्रसग ।। श्री कृष्ण गोपनि सहित गाय चरावें थे भूष लगी मथुरा में ब्राह्मन जज्ञ कर थे सखा पठाय तिनसों भोजन माग्यौ तिन सत्कार नहीं किए तब फेरि जाय तिनकी लुगायनि सौं कह्यौ तब द्विज पत्नी सब विविध भोजन ले कै सापनि सहित श्री कृष्ण कौं जिवाइ गई तिनके पति न श्राप कौं अनकरि माने स्त्रिन की बहुत सराहे तुम धन्य हो ।।

दोहा ।।

जज्ञ करत द्विज सौं मग्यौ भोजन सखा पठाय ।
नहो दिए तिनिकी तिया गई सु कान्ह जिवाय ।।१११।।

अथ गोवधन धारन लीला ।।

दाहा ।।

पूजा हरि हरि इद्र की गोवधन की कौन ।
वरिस थाकि अभिषेक करि गोविंद नाम सुदीन ।।११२।।

सवयौ ।।

पूजा पुरदर की हरि लोपि कै पूज्यौ है भूधर मोद मचाव ।।
यौ सुनि वासव मेघनि की पठयो व्रज बौरहु रोमनि छाव ।।
देषि घनै घन स्याम धरयौ नग जोर लयौ सुर सक उठाव ।।
कील से कोल के दात कढै मति जात की भूमि बराबर पावै ।।११३।।

वासव कोप कियो व्रज की वसुधा पै प्रल को पयोद पठायौ ।।
एचि लियो छिति त नग छत्र सो कान्ह ही सक्र को सत्र मिटायौ ।।
देषि सिहानी धनी नद रानी मु गोप सुता ताको गव गवायौ ।।
तो तन छीर को जोर नहो यह जोर है चौगि क मापन पायौ ।।११४।।

डारत झकोर घनघोर पर बूंद जोर
इतै कोप गोकुल पै वासव को आयिवौ ।।
वासर विभावरी को भेद न परै है जानि
चपला चलाय कर ओला वरसाइवो ।।
छिगुनी की छोर पै धरचौ हैं गिरि नदलाल
तीछन नटाछ नव बाल को चनाइवो ।।
स्वेद कप गात हरौ हाथ टिगुलात कैसो
लाज मै परचौ है नगराज को उठाइवौ ।।१२०।।

घूघट ओट बनाय सखी लखि नाह है
आजु माहानग धार ।।
धूम परी घन की नभ मैं चपला जलधार
बयार की मारैं ।।
गाकुल माहि विनोरति तोहि कबै सुधि
मोहन नाहि सभारै ।।
नेकु रहै निचली किन वात वे गैर
पहार को हेरैं तिहारैं ।।१२१।।

वासव को डरु नक लगै न कहा भयौ गोकुल ज्यौं व्रज घेरे ।।
ओलनि मारि चलाय बयारि पकगो उपाय बनाय घनेरे ।।
घूमत तोहि विलोकत मोहन एक सखी हिय ससय मेरे ।।
आजु अरी सबही व्रज बाच भयानरि नाचन लोयन तेरे ।।१२२।।

अथ नदजी कौं वरन के दूत ले गए ।।

दोहा ।।

अरुनोदय पहिले गए जमुना नद नहान ।
वरन दूत गहि ले गए पहुचे हरि तिहि थान ।।१२३।।

वदन करि नदहि दिए किए वरुन समान ।
देखि प्रभाव सु कृष्ण मे भयो ब्रह्म को ज्ञान ।।१२४।।

अथ गोपनि कौं मोद रहान दिपायौ ॥

सवयौ ॥

मोप को रहान निलोरनि ना चहे ग्वाल निवेदनि मे भरमाए ॥
मोहन मे मुप की सुपमा तजि काह तहां को तुरत पठाए ॥
कूप मैं भेर लो नागो परे लगि नार न मानन देह डराए ॥
बूडि मर मति गिगु न हन गैं दीन दयाल दया क बचाए ॥१२५॥

पूरब यान दिपाए हे कान्ह गु ग्वालन हठे ललनै मति मारी ॥
तसो नियो तुरत हरि फेरि ले आए ह मुक्ति का वचन तोरी ॥
गोप कहे पछिनाय क ज्ञानिनि रापिए मोप पयाधि म बोरी ॥
रावरो हास बिलास सुधा चपि क्यों मैं चपी निरवान निवौरी ॥१२६॥

अथ रास लीला ॥

दोहा ॥

सरद निसा पूरन ससी सुनि मुरली की टेरि ।
गह तजि आई गोपिका छकी काह छवि हेरि ॥१२७॥

पति तजि उपपति सौं कर रति है तिय को पाप ।
काह बचन यह बान सो लग्यो बढ्यो सताप ॥१२८॥

कवित्त ॥

पालन कर सो पति और पति कस
कहो तारत ही ताके पानि गहैं जमराई है ॥
पाट पर डार राग भोगन बिडार देपि
अग लागी फिरैं काल कुलटी बुढाई है ॥
एसे दोऊ जारनि सौं जोर क बचाव नाहि
ताकौं पति कहै सोई बावरी लुगाई है ॥
बिपति सो रापति हौ भापत हौ कस
आज तुम बिना और पति माने पतिताई है ॥१२९॥

श्री बृजदेबिन कहे ताको जवाब श्री कृष्ण को नहीं आयो या लाज सौं छपे क प्रेम पक्व करिवे कौं छपे ॥

दोहा

नेह पकै तपि विरह सो छपे कान्ह मन धारि।
गोपी हरि लीला करति हेरति फिरति मुरारि ॥१३०॥
ललितादिक तरुलतनि सौं पूछत मोहन जात।
देषे हो तो कहौ किन सुंदर सावल गात ॥१३१॥

तुलसी जी सौं पूछ है ॥
सवयौ ॥

ग्वालि सबै तुलसी सौं कहै मन मोहन मोहि मिलावौ दिपाय कै ॥
पावन पावन माहि बसौ मन भावन के मति राष्यौ छपाय कैं ॥
कामिनि जामिनि मैं विलपी लपिकयौं चित राष्यौ करेर बनाय कैं ॥
नेंकु चितारत आरत के तुम आरति वेग विडारति आय कै ॥१३२॥

व्याकुल ह्वै नदलाल विना व्रजबाल फिर बन मैं विलपाही ॥
मोहन की मन भावती हौ तुलसी कहौ काहु गये किहि ठाही ॥
पूजत रापति हौं तुमकौं तऊ लाल लषौं न कही नहि जाही ॥
सोन लषै हरि कौं जिनके घर मैं गरमे करमे तुम नाही ॥१३३॥

आगे जायक पावन के चिन्ह देषे फेरि एक गोपी कौं संग ले गए थे वा गोपी ने आपन बस जान्यौ तब वाहूकौं छोडि गए वा गोपी कौं विलाप करती इन सवन देषी फेरि कृष्ण को न पाए तव सव विलाप करिबे लगी तब श्री कृष्ण प्रगट भये ॥

दोहा ॥

हरषी हरि मुष को निरषि मिली उराहन देत।
मानि आपनी चूक तव कान्ह नमे बस हेत ॥१३४॥

नोहरन ॥

सेत अति कोमल अमल चारू रेत लस
छोड करि भोडल न सकै यौ निकाई है ॥
मद मद सीतल सुगंध गंधवाहु वहै
सारे आसमान मैं विमानि छवि छाई है ॥
दोय दोय गोपी बीच इन्दु सो गोविंद सोहै
मोहै मन सबही की मंडली बनाई है ॥
मंडली के बीच नचै राधिका कन्हाई मानौं
काय करि काम साथ नाचन जुन्हाई है ॥१३५॥

चादनी दुपारर की छिति म सरस छाई
सोभत है स्याम नदुवर वप की दिए ॥
पारर मिपा सी दुति दीपे तिय श्रगन की
ननि नो ना रूप श्रागर छरी पिए ॥
गान करि ताा वारी तन श्रारे मान
पर माहिनी की माहै पिय श्रम भुज की दिए ॥
दहनि वनाय मानो मन क श्रपारा श्राय
गानत केदारा नो केदारा रागिनी लिए ॥१३६।

सवयौ ॥

ललना सग नाचत लाल सग नगिग रस ग्रीव डुरावनि मैं ॥
मन मोहन का मन लनि गयै तिरिछे चप चारु चितावनि मैं ॥
उघट तत थेई ये थेई बढ सुपमा न थरी थहरावनि म ॥
सरस दुति कु डन नोला की रसभोननि की धुनि पावनि मै ॥१३७॥

दोहा ॥

ताल प पाव पर व्रजवाल के लाल प लाग कटाछन के सर ॥
नाचत लोल कपोलन प श्रलक डुल श्रानन प श्रम सीकर ॥
चौगुनो रास मै इ दु उजास बढ्यो सुर देपि कहै नभ ऊपर ॥
ए नही चन्द मयूप भय मनो पूपन माहि पियूपन के कर ॥१३८॥

मन मोहन गोप सुतान क मडल मध्य रसे हरि ख्यालनि मैं ॥
मिलि कीरति की तनया सा नचै दमक दुति श्रग रसालनि मैं ॥
छनि जात है भौर की मोरनि सा विसर सुर लोचन चालनि मैं ॥
व्रजवाल कहै बृपभानु लली ढिग चूरत लाल न तालनि मैं ॥१३९॥

श्रम सीकर सोहत श्रानन प गति लेति क गोप सुता मटक ॥
चल क कटि छीन पयावर के भर राजत भूपन की चटक ॥
पगु नू पुर की धुनि पूनि रही मिलि चूरी सौं चारु वज कटक ॥
हरि हेरि रहे छबिलापट की मुप पै चटकीली लट लटक ॥१४०॥

एते तान माहि हरि नाचै बृज बाल साथ
ताकै कहु ना मरति लीला मकरद है ।।
दपन कदप लील हस लीला लीन पुनि
ललित ललित प्रिय वचन मुकद है ।।
गौगी वरयान चित्र कदुक श्री नद जय
विजय अनग श्री रग अभिनद है ।।
कनकाकन चद्रकला उत्तम सरस रछा
पूरन निमक लोल सिंहनाद चद है ।।१४१।।

प्रति ताल म मोद मचावति है वृषभानु लली अरु वीर कन्हाई ।।
पुनि दीपक मैं कुन दीपक दोऊ नचै जय मगलदाई ।।
वन नारी कर बनमाली मैं रग श्री कीरति मैं नचि कीरति जाई ।।
नद नदन नद सो ऊमव सो दोऊ तालन म वृज बाल रिझाई ।।१४२।।

अथ श्री भागवत प्रकास को कवित्त ।।

पकज म चरन वरन वरन चारू वेसरि त
तरुनी के जूथ पिय आनद करैया है ।।
लोचन विसाल भुज मृदुल मृनाल से हैं
अग जगमगे जोति मन के हरया हैं ।।
लल गति ललित परत पाव तालनि प
गाव कान्ह मिलि साचे सुर भरैया ह ।।
मेरे जानि अवनी म आय निसानाथ
साथ तरनि ननया तीर नाचति तरैया है ।।१४३।।

सरद जुन्हाइ रास मडल रच्यौ कन्हाई
समि त अधिक सोभा तिय मुपमे लहै ।।
नाचै गोपी गन म मगन नदलाल हरि
विथुरी अलक चारु चाहैं चित को गहै ।।
लाडली ललित गति लेत वहु भेद भरी
चलवलि देपि सुप छायो निहु लोक है ।।
प्यारी उर अचल सरकि जाति चोली लपि
छवि जात मोहन अबोलो बासुरी रह ।।१४४।।

अथ जल केलि ॥

करि रास गए जल केलि को कान्ह सुप्रान पिया संग मै सरस ॥
विमनी की बनी मैं तियानि के आनन जानि पर हरि को पर स ॥
सब सीचति हैं पिय को लपि क नभ देवनि की दयिता तरस ॥
कर की पिचकारिन की भरिसो मनो वीजुरी वारिद प वरिस ॥१४५॥

दोहा ॥

रानि भई षट मास की रमे कान्ह जव रास ।
लीला करि सब कुंज की गए देषि रवि भास ॥१४६॥

अथ सदसन जच्छ को प्रसग ॥

दोहा ॥

जच्छ सुदसन सप भो साप अंगिरा पाय ।
ग्रस्यौ नद कौस्वपद हरि भेज्यौ चरन छुवाय ॥१४६॥

अथ सप चूड को बध ॥ चन्द्र की चाँदनी में कान्ह रास कर थे तहा सख चूड आय एक गोपी हरी ॥

दोहा ॥

सप चूड के मूड ते लीनी मनिहि उतारि ।
हरी रास मैं गोपिका यात डारयौ मारि ॥१४८॥

अथ जुगल गीत ॥

लोचन की गति को गहि चित्र कियो हरि माधुरी माहि वसेरो ॥
जौ लगि गाय चरावन जाय वित छिन हू दिन ज्यौ विधि केरो ॥
कोटिक भान उग असमान मैं ह्वै किन पूरन चद को घेरा ॥
तौ भी सषी सुनि गोप सुतानि को कान्ह बिना ब्रज होत अंधेरो ॥१४६॥

प्रात समैं वन जात लला घर आवत होति जब रजनी है ॥
मोहन की छवि जोहन को सु कहा कहिए अकुलानि घनी है ॥
कान्ह के आनन की सुषमा दिन मैं लप सो धनि धन्य गनी है ॥
गोपन की तरुनी त सुषी मषी भीलनि की घरनी हरनी है ॥१५०॥

सौ गुने सुंदर पाय पयोज तें अगन रूप अनूप अयागें ।।
चंद सो आनन पै अलक निरष सषि काम हू को मन रागें ।।
भोरहि नंद किसोर गए बन संग चहै चित प्रान लें भागें ।।
जो बलवीर लप विनपीर सो तीर तें तीषी सरीर में लागें ।।१५१।।

अथ अरिष्टासुर बध ।। कंस को पठायो वृषभ को रूप धरि अरिष्टा सुर व्रज पर बडो उपद्रव करिबे लग्यौ तब श्रीकृष्ण ताहि असुर कौं मार्‌यौ ।।

वृषभासुर को असु लियो लरि कै कान्ह कुमार ।
पसु पै गालिव गोप है यह नहि लप्यो गवार ।।१५२।।

वार्ता ।।

जोगमाया ने कह्यौ कंस तेरौ सत्रु और ठौर उतपन्य भयौ यह बात सुनि कंस देवकी वसुदेव जी सौं अपराध छमा कराय छोडि दिए नारद जी आयौ जब भक्त पर भीर परै तब भगवान असुरन के संघार कर यह मन मैं विचारि कंस सौं कह्यौ श्रीकृष्ण बसुदेवजी के पुत्र है इनहीं छपाय गोकुल राषि आए हैं ।। यह सुनि के फेरि कंस देवकी बसुदेवजी कौं रोके ।। अक्रूर कौ व्रिज पठायौ ।। ईहा धनुष जज्ञ है ।। बलदेवजी श्रीकृष्णजी कौं ले आवौ ताहीदिन अक्रूर मथुरा मैं रहें ।। ताहीदिन केसी असुर कौं पठायौ ।। सौ व्रज मे अस्वरूप धरि बडो उपद्रव करतो आयो ।। श्री कृष्ण ताकौं मुष मैं बांहि डारि मार्‌यौ ।।

अथ केसी बध ।।

दोहा ।।

केसी जलद तुरंग कौं मार्‌यौ हरि करि कोप ।
चढिबे कौ राष्यो नहीं हय परिषै मया गोप ।।१५३।।

सवयौ ।।

काल करौन हरौन भया जिन कंस के मामन को अभिलाष्यौ ।।
रागिसी संग म नागि चलै चिल प्रान नहीं कछु जीव को जाष्यौ ।।
चूर किए हैं नमूर से मनुनि टूरि कै भूमि के भारि कौ नाष्यौ ।।
का ह कुमार मिवारन म जमना तट का रमना करि राष्यौ ।।१५४।।

अथ व्योमासुर वध ॥

श्री कृष्ण ग्वालनि को भेडा बनाय कै पेल थे तहा व्योमासुर गवाल वेष बनिक आयो ग्वालनि नै लेक कदरा में डारि द्वार प सिला दे आव तब कृष्ण जानि गए ताकों भूमि मैं पछारि मारयौ ॥

दाहा ॥

व्योम प्याल म ग्वाल हरि गुद कदरा बीच ।
मोहन मय सुत कौं हयो जानि असुर है नीच ॥१५५॥

अथ अक्रूर आगम ॥

आयो भोज पति को पठायो नदिनी को नद
पूछै नद गोप दसा कस पाप मूर की ॥
काह को बुलायो चाहै चाप उचवायो
बलदेव सा करायो चाहै कुस्ती मल्ल सूर की ॥
सुनिकै जबान ग्वाल ग्वलिनि के सूखे प्रान
गुरता गई है सब ही के मुष नूर की ॥
असि का है घात क प्रलय को है उतपात
असनि को पात कधौ बात अवरर की ॥१५६॥

दाहा ॥

प्रात होत सग काह के गापनि कीये पयान ।
सुफलक को नदन लग्यो जमुना माहि नहान ॥१५७।

गोप भए व्याकुल सब दपि ब्रह्म कौ नूर ।
मोद भर्यो सो हेरि कै जमुना मैं अक्रूर ॥१५८॥

सवया ॥

छाडि चले बृज को मन माहन मोह सो सग सपी गन धाए ॥
या कहि गोपिनि काह कुमार सौ मागी विदा जह छाकि जिवाए ॥
प्रीत का नाता रह्यौ तबलौ जबलौं रहे श्रीबन माहि लुभाए ॥
नातौ भयो तुमसो हरि हीन जब मथुरा की जमीन मैं आए ॥१५९॥

दाहा ॥

कवि की रही सरस्वती बृदावन मे आय ।
नीठि नीठि कर देत है नदहि नज पहुचाय ॥१६०॥

नदजी मथुरा बाहिर डेरा किए बलभद्रजी श्रीकृष्ण जी सपनि सहित मथुरा देषिबे गए ॥

छंद पद्धरी ।।

मधुपुर प्रवेस किय नंदलाल, बलभद्र वीर सग ग्वालवाल ।।
तिय चढ़ी अटन सभ लपति स्याम, छवि देपि छकी कई कहै काम ।।
पुन रजक कंस को मिल्यौ जात, नहि दिये वसन किय तासु घात ।।
जिन जनक सुता का दिय कलंक, तहि मुक्ति दई मोहन निसंक ।।
हरि बायक दरजी सा मिवाय, पहे सु आप गोपन पहाय ।।
तहि मुक्ति मजूरी काह दीन, घर गए सुदामा के प्रवीन ।।
उन पुहुप माल दीनी बनाय, मग जात कूबरी मिली आय ।।
जो प्रथम जन्म सुपनपानाम, तप करतिनि पायौ दरस स्याम ।। १६१।।

तासौ लिय चंदन नंदलाल, कूबर गवाय दिय छवि विसाल ।।
मुहँ माग्यौ वर तिहि दिय मुरारि धनु सक तोर कर दियौ डारि ।।
कोदंडपाल के किये घात, वल भयो कान्ह को अति विष्यात ।।
बलदेव कृष्ण जुत नंद पास, वसि रहे रजनि पुनिभौ उजास ।।
निसि कंस सपन देषे मलीन, निज अग लष्यौ उतमग हीन ।।
भौ भार भोजपति रंगभूमि, आयौ समल्ल अति कोप भूमि ।।
तहं पटह दुंदुभी को निनाद, सब करत मल्ल जय जय विवाद ।।
गज राषि कुवलयापीड द्वार, तब कह्यौ बुलावा द्वै कुमार ।।१६२।।

नंद जी आदि गोपनि सहित बलदेवजी श्री कृष्ण जी द्वार प आए तब महावत सो कह्यौ हाथी दूर कर तब महावत श्री कृष्ण की ओर हाथी चलायो तहा महावत समेत हाथी कु मारि रंग भूमि मे आए ।।

दोहा ।।

मारि कुवलयापीड गज रंग भूमि मे आय ।
भासत है मन कंस के कार रूप द्वै भाय ।।१६३।।

अथ मल्ल जुद्ध ।।

सवया ।।

रंग मही म अनंग सो मोहन मन्न के सगर माहि प्रवीनो ।।
नाव बचावत नाचत है छिन हा महि चूर चनूर को कीनो ।।
राम सा तामल वा जु हत्यौ मलभौ कर लागत प्रान विहीनो ।।
मुष्टिक कूट सा जूटि कं जग भली विधि मारि हली जम लीनो ।।१६४।।

गज बेठी बाहरोय एक हाथी माती चूर,
रगाधर क ठीग लहय पोलक सहे ॥
बाहु बली बद सबी बद श्री श्रगिल बद,
फितीक क मूराछिटिकाहू धो पकाम है ॥
झझा बद भीतरी दुलग असवारी बद,
कालाजगी चपरास लाय भैटक सहे ॥
हली काहू चली इनि दावनि सा मल्लनि,
का मारिक पमारि दिया जग म सुजस है ॥१६५॥

मारे परे जब मल्ल अपारे में कौन चहै बलबीर उबारयौं ॥
बाधि रयौ बसुदेव व्रजेस कौ रोस सौं श्रासुर श्रस उचारयौ ॥
बद करौ सु नि नद कौ कानतब हरि मातुल कौ जु पछारचौ ॥
श्राय परयौ महि कम परद मचान त काहू मिचान को मारयौ ॥१६६॥

इति कस वध ॥

दाहा ॥

बिदा देत हरि नद का जो दुप उपज्यौ श्राय ।
पाहन त ह्वै कठिन हिय तासो बरयो जाय ॥१६७॥

हरि बिन नद निहारि व्रज बाढ्यौ बिरह श्रपार ।
मोहन के गुन गावहीं निसदिन ग्वारि गुवार ॥१६८॥

भाम सुप नहि बिरह में कहत प्रवीन सवाद ।
गूढो एकहि का लगें एकहि होत प्रसाद ॥१६९॥

कवित्त ॥

कन्हू को भए बसुदव हू को सुत काहू
ज्ञानी गग कह्यौ ताकी बानी न भगरते ॥
भई जा भवानी जग जानी बात अउर म
जायकें बपानी दोऊ मापि को उचरते ॥
पन फेर फार नहिं जमुना के पार तुम रह
चाबीदार श्राठा जाम चौकी करते ॥
जाय न परद जहा पर तुम बद ऐम
कहते ज्यों नद जसुदेव झूठे परते ॥१७०॥

दोहा ॥

सुत साचो हरि नन्द को रसना रसहि लुभाइ ।
रह्यौ न भाने श्रन्न मही भोग मही का पाइ ॥१७१॥

कवित्त ॥

क्व ही को मोद भरे गोद आवै जसुदा के
माषन को माग कब रोकि कै मथानी है ॥
बछरा चरावै चारु मुरली बजावै हरि
गोधन को गावै आछी काछनी सुहानी है ॥
मार को मुकट कटि राजै पीत पट
कर लीन है लकुट अति सोभा सरसानी है॥
कान्ह की जवानी नहि जात हैं बपानी
बुध सुधा रस सानी बृज लीला मैं बिकानी है ॥१७२॥

सवयौ ॥

आगन मैं तुलसी नरपै रुचि सौ कबही नही साधुन जोहै ॥
तीरथ क नहि तीर तकै हरि की प्रतिमा लषि कै नही मोहै ॥
दासपना सपना म नही मन आन नही जम को पटको है ॥
कान मे काहू कथा न परीतौ बृथा जग जीवन जीवन को है ॥१७३॥

हमारो कियो रामायन सार ताको ॥

कवित्त ॥

तुलसी का सेवन प्रसाद को न जतन
है जाके अग नाहि हरिदासन को बानो है ॥
धरम का नाम नही कहै मुष राम नही
कबहू न काहै कोउ दिवावै एक दाना है ॥
साधुन का सग तजि सग ल असाधुन को
चतुर कहावै सोचि देषें ते दिवानो है ॥
कथा को न श्रवन भवा तावे भूतन को
समन के दूत को रमन ठिरानो है ॥१७४॥
फाका काठै भाई भूप काढति लुगाई राम
चून काढ्यौ चमू म न दादनी चुकाई ॥
एक हू न वास बनवास मे कपास का है
रेसमी कहा ते चीर चादरि सुहाई है ॥
एसेई कसाला मे परी है नक पाला पुन्यौ
बाभन को ताला देत द्वारनि लगाई है ॥
तीन लोक आता भक्ति दीजिए लषन भ्राता
तासो कोई दूसरो न दाता रघुराई हैं ॥१७५॥

गज वेडी वाहरीय एव हाथी मोती चूर,
रगाधर क ठीग लहथ पोलव सहै ।।
वाहु वली वद सवी वद श्री श्रगिल वद,
फितीक क मूराछिटिकाहू धो पकाम है ।।
भभा वद भीतरी दुलग असवारी वद,
कानाजगी चपरास नाय भेटव गहै ।।
इनी वाहु वली इनि दानि सा मल्लनि,
कौ मारिकै पमारि दिया जग म सुजस है ।।१६५।।

मार परे जब मल्ल अपार मे कौन चहै बनवीर उचारयौ ।।
वाधि रयो वसुदेव ब्रजेस कौ रोम मौ श्रासुर भ्रम उचारयौ ।।
वन रो मु नि नद का वानतव हरि मातुल कौ जु पछारयौ ।।
प्राय परयो महि वग परद मचानत राहु मिचार को मारयो ।।१६६।।

इति कस वध ।।

दोहा ।।

विदा देत हरि नद का जा दुख उपज्यौ श्राय ।
मोहन नें हू कठिन हिय तामों वरन्यो जाय ।।१६७।।
हरि विन नद सिधारि ब्रज बाढ्यो विरह अपार ।
मोहन के गुन गोपजी निमि दिन रहिरि पुकार ।।१६८।।
भाम मुख नहि विरह म रहत प्रयोग सवाद ।
गुरी हरि का मग तरि हार अगार ।।१६९।।

कवित्त ॥

कब ही कों मोद भरे गोद आवै जसुदा के
माषन को मागै कब रोकि कै मथानी है ॥
बछरा चरावै चारु मुरली बजावै हरि
गोधन को गावै आछी काछनी सुहानी है ॥
मोर को मुकट कटि राजै पीत पट
कर लीने है लकुट अति सोभा सरसानी है॥
कान्ह की जवानी नहिं जात हैं बपानी
बुध सुधा रस सानी बृज लीला मैं बिकानी है ॥१७२॥

सवैयो ॥

आगन म तुलसी नरप रुचि सो कबही नहीं साधुन जोहै ॥
तीरथ क नहिं तीर तक हरि की प्रतिमा लपि के नही मोहै ॥
दासपना सपना में नही मन आनै नही जम को पटकी है ॥
कान म काह कथा न परीतौ बृथा जग जीवन जीवन को है ॥१७३॥

हमारो कियो रामायन सार ताको ॥

कवित्त ॥

तुलसी को सेवन प्रसाद को न जैवन
है जाके अग नाहिं हरिदासन को बानो है ॥
धरम को नाम नहीं कहै मुष राम नहीं
कबहू न काहूँ काउ दिवावै एक दाना है ॥
साधुन का सग तजि सग ल असाधुन को
चतुर कहावै सोचि देषें त दिवानो है ॥
कथा को न श्रवन भवन ताके भूतन को
समन के दूत को रमन ठिकाना है ॥१७४॥
फाका काठे भाई भूप कान्ति तुगाई गम
चून बाढ्यो चमू म न दादनी चुकाई ॥
एक हू न वास बनवास म कपास का है
रेसमी कहा त चीर चान्दरि सुहाई है ॥
एसेई कसाला मे परी है [illegible]
बाभन को ताता दत बान्नि [illegible]
तीन लाक त्राता भक्ति [illegible]
तासो कोई हमगे न [illegible]

दोहा ॥

कह्यौ दसम अनुसार श्रम घटि बढि कैं कहुँ कौन।
जहा वचन जाको बनै लहैं लाय प्रवीन ॥१७६॥
मोहन लीला ग्रन्थ का पढ सुन जो कोय।
सब सुप भ्रवनी म मिल सपा कान्ह को होय ॥१७७॥
गगा तट जमुना निकट तुलमी ढिग हरि धाम।
पढै सुनै ताको मदा पूरन ह्वैं सब काम ॥१७८॥
राम राति हर जन्म दिन याम पढ जु काय।
सुन पाठ ताके हिए मोहन परगट होय ॥१७९॥
माली दरजी को दई मुक्ति मजूरी कान।
प्रेम भक्ति दयौं म नही चाहत हा निरवान ॥१८०॥
मोहन लीला ग्रन्थ रचि म माग्यौं ललचाय।
जहा कहू मा जन्म ह्वैं यह न भूलो हरिराय ॥१८१॥
मोहन लीला का पढ सुन नस सब राग।
लागै मन गोविद म श्रनायास नहि जाग ॥१८२॥
तुलमी को सेवन मिल वृन्दावन को वास।
जमुना के तट मैं रहा ह्व राधा हरिदास ॥१८३॥
परगना गार श्रा जका है सारनि सरकार।
गाव चनपुर मैं बस हरि कवि का परवार ॥१८४॥
मारवाड म कृष्णगढ किया सुकवि सुपग्राम।
माहन लीला ग्रथ रा तहा किया परगाम ॥१८५॥
सुकवि रामधन का तनय हरि कवि है नह नाम।
अगहन वदि एकादमी ग्रन्था गु न घनम्याम ॥१८६॥
राम हुतासन गज ममी मरन माहि धराय।
गप रहसो ग्रथ का गा वत्सर टहराय ॥१८७॥
इति हरिचरणदास कृत मोहन लीला मपूरण ॥१॥
मीनी श्रावण वदि १० शनिवारे मवत १८५६ का ॥२॥